मङ्गल समर्पण 6

पत्रांजलि :

(1)भावनात्मक पत्र : पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति (2)पारिवारिकजनों के प्रति (3)आत्मार्थियों के प्रति

कैलाश चन्द जैन
अलीगढ़-202 001 (उ.प्र.)

॥ श्री ॥

समय – प्रातःकाल **दिनाँक 29-5-1968**

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे परमकृपालु पूज्य गुरुदेव!

वर्तमान में अपनी बात किससे करूँ? आपके अलावा दृष्टि जाती नहीं!

हे पूज्य गुरुदेव! (आपने बतलाया है कि) —

पुण्य, पाप, धर्म का सम्बन्ध, मात्र आत्मा से ही है; शरीर, कर्मादि से नहीं।

अपनी आत्मा का आदर, धर्म है; अपनी आत्मा का अनादर, अधर्म, अर्थात् पुण्य-पाप है।

अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का अनुभव-ज्ञान-स्थिरता ही धर्म है। पुण्य-पाप का अभाव, अर्थात् अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव से खिसक जाना, अधर्म है।

देव-गुरु-शास्त्र का आदरभाव, सम्यग्दर्शन नहीं है; सम्यग्दर्शन तो अपने त्रिकाली ज्ञायक का अनुभव है, अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया लोभादि के उपशमादि के निमित्त से अपने आत्मा में शुद्धि का प्रगट होना, वह सम्यग्दर्शन है। अपने में निर्विकल्पता होने के बाद देव-गुरु-शास्त्र के प्रति आदर का भाव आवे, यह बात अलग है लेकिन यह सम्यग्दर्शन नहीं है। याद रहे सम्यग्दर्शन होने पर, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति ही आदर का भाव आता है; कुगुरु-कुदेव-कुधर्म के प्रति नहीं। इस बात को बताने के लिए चरणानुयोग में देव-गुरु-शास्त्र के प्रति श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है। यह व्यवहार कथन है, इसका अर्थ 'ऐसा नहीं है, निमित्तादि की अपेक्षा कथन किया है' — ऐसा जानना चाहिए।

बाहरी क्रिया- (शरीर की क्रिया, आठकर्मों की क्रिया से) सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध नहीं है और राग से भी सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध नहीं है —ऐसा ज्ञानी जानता है।

सम्यग्दर्शन होने पर ही जैनधर्मी कहलाता है। सम्यग्दर्शन के बिना निगोद से लगाकर नौवें ग्रैवेयक तक के मिथ्यादृष्टि जीव, जैनधर्मी नहीं हैं क्योंकि जैनधर्म का सम्बन्ध, अपना अनुभव-ज्ञान-स्थिरता होने पर ही होता है; जैनधर्म मन्दिर,

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

शास्त्रों में, देव-गुरु के पास नहीं है; अपना अनुभव होने पर, देव-गुरु-शास्त्र पर निमित्तपने का आरोप आता है। वास्तव में अपना आत्मा ही देव-गुरु-शास्त्र है। — ऐसा ज्ञानी जानता है, अज्ञानी नहीं।

अपने स्वभाव का अनुभव, गुरुपने में आता है। जैसे, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव में 'यह मैं हूँ' — ऐसा अनुभव-ज्ञान-स्थिरता, गुरुपना है और जैसा त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव है, वैसी ही पर्याय में शुद्धि का प्रगट हो जाना, देवपना है।

सम्यग्दर्शन होते ही केवली (वह जीव), भगवान का सच्चा लघुनन्दन बन जाता है। उसे, श्रावकपना क्या है? मुनिपना क्या है? अरिहन्त-सिद्धपना क्या है? श्रेणिपना क्या है? — आदि सब बातों का पता चल जाता है। उसे कभी आकुलता-चिन्ता नहीं होती है, क्योंकि वह जानता है कि मैं अपने स्वभाव में स्थिरता करूँ तो श्रावकपना है और विशेष स्थिरता करूँ तो मुनिपना / श्रेणिपना आता है और अपने में परिपूर्ण स्थिर रहूँ तो अरहन्त-सिद्धपना प्रगट होता है। सम्पूर्ण मिथ्यादृष्टि जीव, एकमात्र एकत्वबुद्धि के कारण दुःखी हैं — ऐसा पता चल जाता है।

देखो! चौथे गुणस्थान में सिद्धसमान! यह अपूर्व बात ज्ञानियों के हृदय में आती है। सुख का सम्बन्ध आत्मा के अनुभव-ज्ञान-स्थिरता से है; दुःख का सम्बन्ध अपने स्वरूप का पता न होने से है; पर से तो त्रिकाल में बिल्कुल नहीं है।

ज्ञानियों को जब भी विकल्प आता है, वह यह कि हे संसार के जीवों! तुम भगवान हो, तुम अपने भगवानपने की ओर देखो और तुम्हारी पर्याय में एक समयमात्र की मूर्खता है। तुम अपने भगवानपने की ओर देखो तो सुख-शान्ति तुम्हारे पास है। पर में तो तीन काल-तीन लोक में कोई कुछ कर ही नहीं सकता है।

ज्ञानी विकल्प को भी हलाहल जहर मानते हैं। उन्हें तो एकमात्र अपने स्वभाव में ही रहने की भावना है। जब चौथे गुणस्थानवर्ती की दृष्टि त्रिकाल, अर्थात् जब से अपना अनुभव हुआ है, अपने स्वभाव पर होती है, तब ऊपरवालों का तो कहना ही क्या है।

चौथे गुणस्थानवर्ती जीव पर को, राग को, पर्याय को जानते तो हैं परन्तु 'यह मैं' — ऐसा नहीं जानते हैं। ज्ञानियों को अपनी-अपनी भूमिकानुसार

निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; किंचित्मात्र भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, यह निश्चय है।

- आचार्य कुन्दकुन्ददेव

महाव्रतादि का भाव आता है, उसे अनर्थकारी जानकर उल्लंघ जाते हैं। ज्ञानी की दशा, ज्ञानी ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं।

हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

आप जो कहना चाहते हैं, उस बात का आदर ज्ञानियों को ही होता है। ज्ञानी ही आपकी बातों का मर्म जानते हैं। ज्ञानी ही वर्तमान में आपको तीर्थङ्कर के समान जानते हैं।

सोनगढ़ में रहना, आपके पास रहना है —ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। जिसको अपना अनुभव हुआ है, वह हर समय आपके पास ही रहता है —ऐसा मैं मानता हूँ।

हे पूज्य गुरुदेव! आपका यह फरमान कि धर्म का सम्बन्ध अपनी आत्मा से ही है; पर से नहीं —यह दिव्यध्वनि का सार है। कीमत हर समय अपने आत्मा की है —ऐसा पात्र जीव जानता है।

हे पूज्य गुरुदेव! मैं आपको शत शत वन्दन करता हूँ—यह भी निमित्त का कथन है। आपकी बात को जब तक सम्यग्दर्शन न हो, वह नहीं समझ सकता है। हाँ तो मिथ्यादृष्टि करता है परन्तु समझ में नहीं आ सकती है।

आपका सेवक

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

तत्काल प्राणों को हरनेवाला विष खा लेना अच्छा; भयङ्कररूप से सुलगती हुई अग्नि में प्रवेश करके, जलकर राख हो जाना अच्छा; और अन्य किसी कारण द्वारा यमराज की गोद में समा जाना अच्छा, परन्तु तत्त्वज्ञान से रहित होकर इस संसार में जीना अच्छा नहीं है।

– आचार्य अमितगति

॥ श्री ॥

समय – दोपहर **दिनाँक 29-5-1968**

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन् दियो बताय॥

हे परमकृपालु पूज्य गुरुदेव!

आप (निमित्तरूप) मेरे सर्वस्व हो। यदि आज मुझे संसार में किसी से राग है, तो वह आप ही हैं परन्तु यह राग भी दु:ख का कारण है।

उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझै कौन॥

सितम्बर 1956 में मेरा उपादान जागा तो उसमें निमित्तरूप आप हैं; इसलिए मैं आपको ही तीर्थस्वरूप में नमस्कार करता हूँ।

(1) **हे पूज्य गुरुदेव!** मुझे आपके समक्ष अपने जीवन का लेखा-जोखा रखने का भाव आया है, उसमें मेरे कथन में जरा भी असत्य नहीं होगा।

व्यवहार से बोलने में ऐसा आता है कि मैं टीकरी, जिला-मेरठ का रहनेवाला हूँ। मेरे पिताजी सर्राफा का काम करते थे... उनको जब मैं पाँच वर्ष का था, बड़ा भारी घाटा लगा। तब दुकानादि बेचकर सब का कर्जा दे दिया। उनके पास रोटी खाने और बच्चों को खिलाने के लिए भी रकम नहीं थी।

(2) ऐसे समय में हमारे यहाँ पर भगीरथदासजी वर्णी तथा और त्यागीगण पधारे, उनमें गङ्गाप्रसादजी व मूलचन्द्रजी ब्रह्मचारीजी के कहने पर मेरे पिताजी ने मुझे चौरासी (मथुरा), जहाँ से अन्तिम केवली मोक्ष पधारे, पढ़ने के लिए भेज दिया। छह वर्ष की उम्र से ही मैं ब्रह्मचारी की दशा में वहाँ रहने लगा। वहाँ पर मैं तीन साल पढ़ा।

(3) हम शाम को घूमने जाया करते थे। रास्ते में अन्य मत के साधु आते-जाते थे तो मैं उनको देखकर चिढ़ाता था कि जो 'कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पौषे चिर दर्शनमोह एव' — उस समय इसका अर्थ भी नहीं मालूम था, लेकिन ये सब झूठे हैं और हमारे देव-गुरु-शास्त्र ही सच्चे हैं — ऐसा मानता था।

(4) एक बार वहाँ पर सप्त ऋषि साधु पधारे — उनमें मुख्यत: आचार्य

शान्तिसागरजी और कुन्थुसागर, नेमसागर, नेमिसागर, चन्द्रसागर, आदि को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आज हमारे यहाँ साधु पधारे। मैं उनकी स्तुति किया करता था 'ते गुरु मेरे मन बसो जो भवजलधि जहाज' आदि।

(5) वहाँ पर मेरा जनेऊ संस्कार कराया गया। बाद में हम लोग भिक्षा माँगने गये — 'माता! भिक्षा देहि' — यह मुझे ऐसा लगा कि ठीक नहीं है, और शूद्र के जल का भी प्रश्न था – मुझे यह प्रश्न बना रहा कि शुद्र कौन है ?

(6) मेरे पिताजी भी उस समय ब्रह्मचारी बन चुके थे, वे अपने को सातवीं प्रतिमाधारी मानते थे। उनका हमारे शहर में अच्छा आदर था, वह भी उस समय मुनियों को आहारदान हेतु पधारे। उनके पास पैसे आदि का अभाव था, उन्हें चौरासी में ठहरने के लिए तम्बू मिला। उन्होंने आहार बनाया, लेकिन मुनियों का आहार उनके यहाँ न हो सका। उन्होंने कई दिनों कोशिश की और अन्त में निराश होकर चले गये।

(7) मैं मुनियों के पास जाता तो वहाँ पर बहुत जनता बाहर से आती थी, जो उनके सामने नृत्यादि करते थे। वे रात्रि को कमरे के अन्दर पुराल (घास निर्मित) भरवा कर, उसमें साधु सोते थे। — कई बार सर्दी ज्यादा होवे तो अँगीठी भी सुलगती देखी। ऐसी बातें देखकर मुझे कुछ ठीक नहीं जँचा, क्योंकि मुनियों के स्वरूप का वर्णन, स्तुतियों में 'गर्मी में पर्वतों पर खड़े रहना, बरसात में वृक्ष के नीचे खड़े रहना' आदि पढ़ा था।

(8) एक बार मैं मन्दिरजी में प्रक्षाल कर रहा था कि छोटी सी प्रतिमा मेरे हाथ से गिर गयी। मुझे उस दिन उतना दुःख हुआ कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैंने गिरते ही उठाकर थाली में रखकर जल से धोकर वेदी में रख दी। उसी दिन मुझे किसी कारण सायंकाल वहाँ के अधिष्ठाता की उपस्थिति में मार पड़ी। मार पड़ने पर मुझे शान्ति-सी मिली कि 'मेरे से प्रतिमा गिरी, उसका यह फल है।'

(9) वहाँ के अधिष्ठाता श्री दीपचन्द्रजी वर्णी थे। वहाँ पर मुनिराज कितने ही महीनों तक रहे परन्तु उतने दिन दीपचन्द्रजी वर्णी वहाँ नहीं रहे। बाद में वह आये तो मालूम पड़ा कि वह उन मुनियों को नहीं मानते थे। 'क्यों नहीं मानते थे' — इसका मुझे कुछ पता नहीं।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

जैसे, रेशम का कीड़ा, अपने ही मुख से तारों को निकालकर, अपने को ही उसमें आच्छादित कर लेता है; उसी प्रकार हिताहित में विचारशून्य होकर यह गृहस्थजन भी, अनेक प्रकार के आरम्भों से पाप उपार्जन करके अपने को शीघ्र ही पापजाल में फँसा लेते हैं।

- आचार्य शुभचन्द्राचार्य

(10) एक बार नाई से हजामत बनाते वक्त मेरे कान का कुछ भाग कट गया, काफी खून बहा तो मैंने सोचा कि 'अब यहाँ नहीं पढ़ूँगा।'

(11) बीच में मुझे पता चला कि मेरी बहिन की शादी है, लेकिन पिताजी के पास मुझे बुलाने के लिए किराया भी नहीं था तो मैं अपनी बहिन की शादी भी नहीं देख सका।

(12) बाद में मेरे बड़े भाई मुझे वहाँ लेने पहुँचे तो वे मुझे ले आये। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ क्योंकि वहाँ पर नंगे पैर, गेरुआ वस्त्र में हम लोग पढ़ते थे। मेरे पिताजी ने मुझे दोबारा भेजना चाहा, परन्तु मैं वहाँ नहीं गया।

(13) उसके बाद मेरे पिताजी ने मुझे फिर सहारनपुर में जम्बू विद्यालय में भेज दिया, वहाँ पर मैं तीन साल पढ़ा।

(14) वहाँ मैंने रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, धनंजय नाममाला, मोक्षशास्त्र आदि अर्थसहित पढ़े और उनकी सोलापुर से संचालित परीक्षा पास की।

(15) वहाँ पर छह या सात रुपये वजीफा मिलता था, उससे ही खाना आदि का कार्य चलता था। मुझे घर से पैसा नहीं मिलता था, न कभी कपड़ा आता था। मैंने वहाँ पर दो ट्यूशन किये, उनमें से मैं उस समय दो रुपया माहवार के करीब अपनी माताजी को भेजने का प्रयत्न करता था। दोनों ट्यूशन की फीस चार रुपया थी। यह मैं छिपकर स्कूल में पता न चले, और अनेक दैनिक कार्यक्रमों में से टाईम बचाकर पढ़ाने जाता था।

(16) मैंने एक बार भादवे में चार या पाँच महिलाओं को तत्त्वार्थसूत्र सुनाने का कार्य किया, उन्होंने मुझे बाद में दो-दो रुपया दिया। वे सब उसे उपवास का फल बताती थी, ये बात मेरे मन में नहीं जमी।

(17) वहाँ पर शास्त्र लिखकर या पूजा करके तनखा लेने का प्रश्न आया तो मेरे मन में यह लगा कि 'यह तो पाप है।' एक लड़का महावीरप्रसाद, पूजा का कार्य करता था, लेकिन हम उसे छूने में भी पाप मानते थे।

(18) एक बार बाग में उत्सव हुआ तो मैंने विद्या के ऊपर भाषण दिया कि 'विद्या, विनय से आती है और जैसे छोटा तिनका धीरे-धीरे बहता हुआ समुद्र में जा मिलता है, वैसे ही विद्या बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से मुलाकात कराती है तथा आहार-निद्रा-मैथुन तो पशु भी करता है और

मनुष्य भी करता है। यदि मनुष्य में विद्या नहीं है तो वह पशु ही है। हमने हितोपदेश के दोहे, श्लोक भी सुनाये तो मुझे दो रुपया इनाम मिला।'

(19) पण्डित दुर्गाप्रसादजी कानपुर के पण्डित थे। वे अपने प्रवचन में रत्नकरण्डश्रावकाचार के श्लोक बोलते थे। मेरे विचार में उनका उच्चारण अशुद्ध था — तो मैं सोचता था, 'ये काहे के पण्डित हैं, लेकिन उन्हें कोई टोकता भी नहीं।'

(20) जब मैं पढ़ता था तो वहाँ पर लाला प्रद्युम्नकुमारजी का लड़का देवकुमार बीमार हो गया तो मुझे उसके साथ, उनके घर भेजा गया। उन्होंने मुझे अपने बच्चे के समान रखा, जैसे अपने लड़के पर खर्च करते थे, उसी प्रकार मेरे पर भी। मैं उनके साथ शिमला पहाड़ पर भी गया, जहाँ सारा दिन खेल-कूद में बीतता था।

एक बार मैं उनके साथ महावीरजी गया तो स्टेशन पर पहुँचते ही हम दोनों सख्त बीमार हो गये, हम स्टेशन से महावीरजी पहुँचे तो वहाँ देवकुमारजी तो ठीक हो गये, लेकिन मेरी हालत खराब हो गई। देवकुमारजी की माता को हम भाभीजी कहते थे, वे बहुत परेशान थीं। मेरे सिराहने बैठी रहती थीं। एकबार उन्होंने बोला कि यह कैलाश ठीक हो जावे तो मैं 60 रुपये का छत्र चढ़ाऊँगी। उनके छत्र बोलते ही मेरा बुखार उतर गया। मुझे भोजन में खिचड़ी दी गई। लेकिन मुझे यह रहस्य समझ में नहीं आया।

(21) वहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब का आचरण खराब था। हमें यह ठीक नहीं जँचा - हमने और लड़कों से मिलकर, उनको.... पकड़वा दिया और उनको खूब मारा, परन्तु उसी दिन एक शास्त्रीजी व्याकरण पढ़ाते थे, उन्होंने बदले की भावना से 'पाठ याद नहीं किया' — इस बहाने मुझे खूब मारा - इस पर मैंने निर्णय किया कि अब इस स्कूल में किसी भी कीमत पर नहीं पढ़ूँगा। मैं वहाँ से भागकर लाहौर चला गया। वहाँ से मैंने बनारस, मुरैना, विद्यालय आदि में पढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु मुझे वहाँ जाने का मौका न मिल सका।

(22) लाहौर में मेरा भाई रहता था। उसने मुझे खूब मारा और वापस सहारनपुर के स्कूल में छोड़ गया, लेकिन मैं भागकर फिर वहीं पहुँच गया और अपना अलग काम चालू किया, उसमें काफी कामयाबी मिली। मैं हर

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

महिने अपनी माताजी को 50/- या 100/- भेजता था। मैं एक बार बीमार हो गया तो मुझे सरकारी हॉस्पिटल में दाखिल कर दिया गया। एक दिन मेरा बिस्तर नहीं बदला गया और मुझे ऑक्सीजन चढ़ाई गई। मुझे पता चला कि जो मरने वाला होता है, उसके साथ ऐसा होता है तो मैंने एक परचे पर यह लिखकर कि मेरा सारा सामान बेचकर मन्दिर में दे दिया जावे, लिखकर रख दिया.... परन्तु बाद में मैं ठीक हो गया।

(23) मैं मन्दिरजी में शास्त्र पढ़ता था तो मुझे लोग पण्डित मानते थे। मैं कई घण्टे शास्त्र पढ़ता था, और उसे धर्म मानता था। बाहरी क्रियाओं-दान देना, पूजा का पाठ बोलना, मन्दिर में बैठे रहना इत्यादि से मोक्ष मानता था तथा यही सबको बताता था, लेकिन बात मन में समाती नहीं थी, जमती नहीं थी।

(24) लाहौर में मैंने रत्न की परीक्षा और हाईस्कूल इंगलिश की परीक्षा पास की और प्रभाकर की परीक्षा दी थी कि पाकिस्तान बन गया तो वहाँ से भागकर बुलन्दशहर आना पड़ा।

(25) मैंने जब होश सम्भाला और कोई भी कार्य किया तो कामयाबी ही मिली। व्यापार में लाभ ही लाभ हुआ, नुकसान कभी नहीं, लेकिन मैं यहाँ पर व्यापार सम्बन्धी वार्ता नहीं करूँगा।

(26) बुलन्दशहर आने पर कई साल मैंने यहाँ पर पाठशाला चलाई। तीन घण्टे पढ़ाया करता था, मेरे आने से पूर्व यहाँ की दशा शोचनीय थी, लेकिन आपस की ईर्ष्या ने चलती हुई पाठशाला को बन्द करा दिया।

(27) सन् 1952 में मुझे शिखरजी जाने का विचार आया — मैं अपने बाल-बच्चों सहित शिखरजी की यात्रा को गया तो मैंने चन्द्रप्रभु भगवान की टोक पर 12 महीना का ब्रह्मचर्य लिया।

(28) शिखरजी में मैंने एक मुनि महाराज से मोक्ष का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा — तुम ऐसे बैठो, ऐसे अग्नि उठेगी, ऐसा होगा, वैसा होगा तो मैंने वैसा किया भी, लेकिन वह मेरी नजर में ढोंग आया।

(29) शिखरजी की यात्रा से आते ही स्वप्न में गिरनार की यात्रा का भाव जागृत हुआ। प्रात:काल होते ही पता चला कि देहली से चन्द्रकीर्ति यात्रा संघ गिरनारजी जा रहा है तो मैं उसमें सीट बुक करा आया। उसी समय मुझे

मङ्गल समर्पण

हे भव्य! तू जीव को रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित, अव्यक्त, अर्थात् इन्द्रियगोचर नहीं ऐसा, चेतना जिसका गुण है ऐसा, शब्दरहित, किसी चिह्न से ग्रहण न होनेवाला और जिसका आकार नहीं कहा जाता, ऐसा जान।

- आचार्य कुन्दकुन्ददेव

दिल्ली के धर्मपुरे में एक त्यागीजी मिले। मैंने उनसे कहा कि 'मुझे समयसार पढ़ना है' तो उन्होंने कहा कि 'यह मुनियों का ग्रन्थ है, गृहस्थियों के लिए पढ़ना योग्य नहीं।'

(30) हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव! 1953 जनवरी में मैं तीन महीने की यात्रा के लिए रवाना हो गया।

(31) अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा करके जब हम रवाना हुए तो मुझे ऐसा लगा 'आज हमारी बस पलटेगी'। मैंने सबसे कहा, लेकिन सबने कहा — 'यह तो ऐसा ही कहता रहता है।' मैंने 11 बजे दिन में यह बात कही और होनहार से उसी दिन के 1 बजे मोटर पलट गई। उसमें सवारियों की हालात काफी खराब हो गई, मैंने जब देखा कि 'बस उलट गई है' मैं समझा आज अपना मामला पूर्ण हो गया है तो मैंने णमोकारमन्त्र का पाठ पढ़ा तो लोग चिल्लाये — 'पण्डितजी.... पण्डितजी' तो मुझे महसूस हुआ कि 'मुझे कुछ भी नहीं हुआ' — मैंने उसी समय चमड़े की चीजें त्यागने का भाव किया और अपना नया चमड़े का फ्लक्स कम्पनी का जूता फेंक दिया।

(32) चलते-चलते पावागढ़ की तरफ चले तो रात्रि में मोटर चल रही थी। मैं सामने की सीट पर बैठा सो रहा था। मैंने स्वप्न में आजन्म ब्रह्मचर्य ले लिया, चमड़े और ऊनी वस्त्रों का त्याग कर किया। रात्रि में ही मेरी पत्नि(स्वप्न में) मेरे पास आई और कहा कि 'लड़का मर गया है, आप ब्रह्मचर्य मत लो'। तब मैंने कहा — 'अब हमारा जीवन, भोग के लिए नहीं है' और मेरी नींद खुल गई।

(33) पावागढ़ पर स्नान करके मन्दिर में जाकर भगवान की प्रतिमा के समक्ष स्वप्न की बात को प्रमाणित किया और आजन्म ब्रह्मचर्य ले लिया। तब से लेकर आज तक स्वप्न में भी भोगादि का भाव नहीं रहा। अब संसार की सब स्त्रियाँ माँ-बहिन-बेटी ही दिखाई देने लगीं।

(34) चलते-चलते रास्ते में आचार्य के दर्शन किये, तब मैंने सर्व प्रथम उनकी स्तुति की तथा प्रार्थना की आप मुझे दीक्षा दो तो उन्होंने कहा — '**मन्दिर तुम जाते ही हो, सम्यग्दर्शन तुमको है ही, दूसरी प्रतिमा ले लो।**' यह सुनते ही मैं पीछे हट गया कि यह ठीक नहीं है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

(35) रास्ते में मैंने किसी भी देव-यक्ष, पद्मावतीदेवी आदि को भी नमस्कार नहीं किया, क्योंकि मैं अपने को मूल दिगम्बर मानता था।

(36) फिर हम अहमदाबाद पहुँचे तो वहाँ पहुँचते ही मैं धर्मशाला के बाहर खड़ा था, ऊपर चैत्यालय था। नीचे कुछ आदमी कानजीस्वामी सोनगढ़ का जिक्र कर रहे थे। एक कहते थे — 'वे महान सन्त हैं'। दूसरे कहते थे — 'ये धोखा है।' मुझे ऐसा लगा कि 'ये कोई महान सन्त हैं, इनसे मिलना चाहिए। मैंने प्रथम बार ही आपका नाम सुना था और सुनते ही मुझे ऐसा लगा — जिनकी मुझे आवश्यकता थी, वे मुझे मिल गये। मैंने उनसे पूछा 'सोनगढ़ कहाँ है?' तो पता चला — यहाँ से गाड़ी शाम 6बजे करीब जाएगी और प्रात:काल सोनगढ़ पहुँच जाएगी। मुझे तुरन्त जाने की आकुलता उत्पन्न हुई। आनन्ददास, जो यात्रा संघ के संचालक थे, उनके पास मैं गया तो पता चला कि सोनगढ़ की सड़क खराब है; अत: उनका वहाँ न जाने का इरादा था। मैंने उनसे कहा — 'आपके प्रोग्राम में सोनगढ़ है; इसलिए आपको जाना पड़ेगा', तब उसने कहा — 'मेरी लारी खराब है, दो दिन बाद ठीक होने पर चलेगी' तो मैंने कहा — 'आप मुझे किराया दीजिए, मैं तो अभी जाता हूँ'। तो उसने कहा 'आप मेरी लॉरी में ही चलना, मैं अलग से किराया नहीं दूँगा।' फिर मैंने उससे कहा — 'जब आप सोनगढ़ पहुँचें तो मुझे वहाँ से ले लेना, मैं तो आज ट्रेन से जा रहा हूँ।'

(37) मैं उसी समय अहमदाबाद के स्टेशन पर आकर गाड़ी में बैठ गया। रास्ते में गाड़ी जल्दी-जल्दी चले, सोनगढ़ आवे, इस प्रकार की आकुलता बनी रही। सुबह होने पर सोनगढ़ स्टेशन आया। स्टेशन पर उतरते ही जैसे मेरे ऊपर बड़ा भारी बोझा रखा था, वह उतर गया — ऐसा ज्ञान में महसूस हुआ। ताँगे वाले ने मुझे समिति में उतार दिया। मैंने वहाँ पूछा — 'कानजीस्वामी कहाँ हैं'। पता चला, उनका प्रवचन चल रहा है। मैं जल्दी से वहाँ पहुँचा तो देखते ही अपूर्व शान्तिसी मालूम हुई, लेकिन प्रवचन गुजराती में होने से कुछ समझ में नहीं आया, लेकिन मुझे ऐसा लगा। — 'जिसकी तलाश थी, वह मुझे मिल गया।'

(38) मन्दिर में कीर्तन, मानस्तम्भ आदि देखने के बाद, शाम को आरती में घी

हे भव्य प्राणी! तू ज्ञान में नित्य रत, अर्थात् प्रीतिवाला हो, इसमें नित्य सन्तुष्ट हो और इससे तृप्त हो - ऐसा करने से तुझे उत्तम सुख होगा।

- आचार्य कुन्दकुन्ददेव

एक आना सेर सुनकर ताज्जुब हुआ। उस दिन आरती की बोली मैंने ली, जो मेरे ख्याल में 36सेर के करीब थी। दो दिन वहाँ रहने के बाद हमारी मोटर आ गई, उनमें से कुछ लोग तो सीधे पालीताना चले गये और कुछ ने प्रवचन सुना।

(39) पण्डित मक्खनलालजी, भजनोपदेशक, धर्मपुरा, देहलीवाले मेरे पास ही बैठे थे। कहने लगे कि 'देखो! कितनी सत्य बात है; लेकिन हम भी पण्डित हैं। यदि यह हमें भी कहते कि 'आओ, पण्डितजी! तो हम भी हाँ में हाँ मिलाते। यह अपने आप ऊपर बैठे हैं और हम नीचे बैठे हैं।' उनकी बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

(40) तीसरे दिन जब जाने का समय आया, मेरा दिल वहाँ से जाने को ना करे। मैंने अपने साथियों से कहा कि 'आप हमारे घर पर खबर दे देना कि वह तो रास्ते में मर गया।' लेकिन उन्होंने हल्ला कर दिया कि इसके 4 लड़कियाँ और 1 लड़का है तो मुझे वहाँ से जाना पड़ा। उस समय जाने का जो दु:ख मुझको हुआ था, वह मैं ही जानता हूँ।

(41) वहाँ से होते हुए हम गिरनारपर्वत पर पहुँचे तो बड़े प्रेम से रात 2 बजे तैयार होकर, यात्रा करते हुए, पाँचवीं टोंक पर पहुँचे तो वहाँ पर मैंने नेमिनाथ भगवान की साक्षी में आजन्म ब्रह्मचर्यादि की प्रतिज्ञाओं को दोहराया। तब नीचे आने पर पण्डित मक्खनलालजी ने मुझसे कहा कि 'तुम्हारी उम्र छोटी है, तुम आजन्म ब्रह्मचर्य ले रहे हो, कल को ना रहा गया तो क्या होगा।' मैंने कहा कि 'मैं तो सबको बताना चाहता हूँ कि यदि कल को यदि मैं प्रतिज्ञा भङ्ग करूँ तो मुझे लोग बुरा कहें।

(42) बुलन्दशहर आने पर सबको पता चला तो सबने मुझे बुरा कहा कि तुमने अपनी स्त्री से पूछे बिना कैसे नियम ले लिया? मैंने कहा कि 'अब मेरा जीवन, भोग के लिए नहीं है।'

(43) मैं कुछ दिन बुलन्दशहर रहकर, फिर 1½ महिने के लिए सोनगढ़ जा पहुँचा। मुझे यहाँ कुछ भी समझ में नहीं आया, लेकिन यह बात दृढ़ हो गई कि मेरा कल्याण यहीं होगा, मैं वापस चला गया। फिर 1 महिने के लिए आया, फिर भी गुजराती न जानने के कारण कुछ समझ में नहीं आया, मैं फिर वापस चला गया।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

(44) मैं 1956में 2½ महिने के लिए सोनगढ़ पहुँचा। मुझे वहाँ पहुँचने पर श्रीरामजीभाई के दर्शन हुए, मैंने उनके पैर छुए। उन्होंने पूछा — 'कितने दिन रहोगे'। मैंने कहा — '2½ महिना'।

(45) मेरी दिनचर्या , रात-दिन जैन सिद्धान्त प्रवेशिका को याद करना और तत्त्वार्थसूत्र को पढ़ना थी। मैं उन दिनों रात 12 बजे से पहले नहीं सोता था और रात्रि को तीन बजे उठकर अपने कार्य में लग जाता था।

(46) एक दिन जल्दी स्नान करके जैन सिद्धान्त प्रवेशिका लेकर में तेजी से शेर की तरह चौकड़ी मारता हुआ जा रहा था। मैं जिथरी (स्थान विशेष) तक याद करता हुआ, चलता रहा, वापसी में मेरे पैर धीरे-धीरे उठ रहे थे, जब मैं माता के टीले के सामने से गुजरा तो मुझे पता नहीं रहा। मुझे वहाँ पर अपूर्व सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई, उस समय जैसे अमृत की डली जैसी दशा थी — यह बात बाद में ध्यान आई कि आज तो संसार समाप्त हो गया।

(47) याद रहे इससे पहले मुझे 'सत् द्रव्यलक्षणम्; उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' का विचार आया था। संसार में अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और काल असंख्यात हैं और प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। एक-एक गुण में एक समय में ही उत्पादव्ययध्रौव्य होता है — ऐसी अनादि-अनन्त व्यवस्था है तो फिर क्या करना रहा! उसके बाद मैंने एक बार वहाँ पर प्रवचन मण्डप में ठहरे हुए क्षुल्लक चिदानन्दजी से कहा किकर्म तो जड़ हैं, वे जीव को चक्कर कटाते हैं, यह आज तक बड़ा धोखा हुआ है। ये दोनों बातें अनुभव होने से पहले की हैं।

(49) अनुभव होने के दो दिन बाद देवीलालजी उदयपुर वाले अपनी स्त्री सहित वहाँ आये हुए थे, वे मुझे मिले, वह मेरे से कहने से लगे कि सम्यग्दर्शन कैसे हो ? तो मैंने उनसे कहा — 'यह तो बहुत आसान कार्य है।' मैंने उन्हें सब कुछ बताया, परन्तु उन्होंने विश्वास नहीं किया तो मैंने सोचा — 'मेरा माल मेरे पास है, मुझे क्या चिन्ता।'

(50) अनुभव होने पर भासित हुआ कि 'शरीरादि से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध है ही नहीं, परन्तु आत्मा के अन्दर रागादि हैं — वे भी पृथक हैं। मेरी दृष्टि, जैसा स्वभाव है, उसी में रहने की रहने लगी। संसार से कोई

मङ्गल समर्पण

हे जगत के जीवों! अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोह को अब तो छोड़ो और रसिकजनों को रुचिकर, उदय हुआ जो ज्ञान, उसका आस्वादन करो; क्योंकि इस लोक में आत्मा वास्तव में किसी प्रकार भी अनात्मा (परद्रव्य) के साथ कदापि तादात्म्यवृत्ति (एकत्व) को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आत्मा एक है, वह अन्य द्रव्य के साथ एकतारूप नहीं होता।

– **आचार्य अमृतचन्द्र**

सम्बन्ध ही नहीं। यह जीव वैसे ही पागल बन रहा है। तब मैंने विचारा कि 'देखो, कितना जीवन व्यर्थ चला गया।'

(51) उससे पहिले शास्त्रों का पठन तोता-रटन जैसा था — ऐसे तमाम बातें ध्यान में आयीं। लेकिन अब शास्त्रों में क्या है — यह जानने की इच्छा हुई। मुझे इस कार्य में श्रीमान् माननीय खेमचन्द्रजी भाई ने मदद की। मुझे अकेले को अपना कीमती समय दिया। उन्होंने उपादान क्या है ? निमित्त क्या है ? आदि बातें बताई। वे समझाते थे, मैं वैसा का वैसा अपने अन्दर उतारता जाता था। मैं तो यह कहता हूँ कि पूज्य गुरुदेव ने मुझे सम्यग्दर्शन दिया और श्री खेमचन्दभाई तथा श्री रामजीभाई ने निर्मल तत्त्वज्ञान पढ़ाया — यह निमित्त का कथन है।

(52) सम्यग्दर्शन होने पर ही चारों अनुयोगों का रहस्य समझ में आता है। आत्मा के अनुसार हुए बिना, तमाम शास्त्रों का अध्ययन बोझरूप है। **हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव! मेरे विचार में यदि आज किसी का कल्याण हो तो उसमें आप ही निमित्त बन सकते हैं, और किसी की पात्रता दृष्टिगोचर ही नहीं होती है। आपने जो दिव्यध्वनि का सार मुमुक्षुओं को बताया है, उस कारण मुमुक्षु आपको सत-सत वन्दन करते हैं। मुझे तो यहाँ तक कहने में भी संकोच नहीं है कि यदि आज आप ना होते तो दिगम्बर धर्म का लोप हो गया होता। आपने तो दिगम्बर जैनधर्म को कायम रखा है, उसके लिए मुमुक्षु आपको नमस्कार करते हैं। — यह निमित्त की बात है।**

(53) अपनी आत्मा का अनुभव ही जैनधर्म है; बाह्य मन्दिर में, देव-गुरु-शास्त्रा में जैनधर्म नहीं है। अपना अनुभव होने पर जैसा अपने को अनुभव हुआ है, वैसा ही देव-गुरु-शास्त्र बतलाते हैं; इसलिए निमित्त की अपेक्षा उन्हें जैनधर्म कहने में आता है। निमित्त का आरोप, जिसको अनुभव हुआ है, उस पर ही हो सकता है; अन्य पर नहीं। जैनधर्म, मात्र अनुभव ही है।

(54) **हे परमकृपालु पूज्य गुरुदेव!** अपना अनुभव हुये बिना, छह द्रव्य, सात तत्त्व, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, हेय-उपादेय का ज्ञान बोझरूप होता है। वास्तव में अपना अनुभव होने पर सब जानकारी सच्ची होती है। अपना अनुभव हुए बिना, शास्त्रों का विशेष ज्ञान होने पर

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मिथ्यादृष्टि 'मैं कुछ जानता हूँ' — ऐसा मानकर, उलटे रास्ते चढ़ जाता है; इसलिए मेरे विचार में प्रथम अपना अनुभव करना पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

(55) **हे पूज्य गुरुदेव!**

मेरे ऊपर दिगम्बर जैन समाज के कर्णधार श्री मनोहरलालजी की विशेष कृपा रही, उन्होंने जबसे मैं सोनगढ़ गया — ऐसा प्रचार किया कि इन्होंने जैनधर्म छोड़ दिया है। समाज की मीटिंग में इनके शास्त्र बाहर फेंक दिये जावें, इनकी दुकान खाली करायी जावे — ऐसा कहा! यहाँ तक कि मुझे मारने तक का प्रयत्न किया। इन सब साजिशों में उनके साथ लगभग सभी थे, क्योंकि वे बड़े आदमी कहलाते थे, वे सबको इकट्ठा करके साथ में लाते थे। — लेकिन मैंने आज तक अपनी स्त्री से भी मेरा साथ देने को नहीं कहा। इन सबके बाबजूद मेरे में कोई कमी नहीं आयी। एक बार मेरे भान्जे शीतलप्रसादजी ने कहा — 'मामाजी! इनकी बात मान लो, नहीं तो बुरी दशा हो जावेगी, दुकान खाली करनी पड़ेगी।' मैंने कहा — 'मैं असत्य बात कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? उस समय मेरे मन में बुलन्दशहर छोड़ने तक का भाव आया था।

(56) **हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!**

आपके चरणों में आने पर मुझे किसी का बुरा करने का भाव नहीं आया; मात्र विरोधियों पर दया का भाव आया कि 'देखो! ये सब एकत्वबुद्धि से दुःखी हैं, इनकी एकत्वबुद्धि दूर हो तो इनका भला हो।' यहाँ तक नौबत आई कि एक बार मेरे परिवारवालों ने तथा मेरी पत्नी ने आपके लिए अपशब्द कहे, जिसका मुझे दुःख हुआ कि 'अरे रे! ऐसे महान सन्त को देखा नहीं, जाना नहीं, उनको भी बुरा कहा।'

(57) एक बार दिवाली के नजदीक रात्रि के एक बजे (स्वप्न में) मैं अपने तख्त पर बैठा था कि आप वहाँ आये और तमाम सिद्धों, अरहन्तों और साधुओं को साथ ले आये। मैंने आपसे कहा — हे गुरुदेव! आप सबको यहाँ ले आये; मैं इनका स्वागत कैसे करूँ — ऐसे कहते ही आँसुओं की धारा बहने लगी। आपने इशारा किया — अपनी ओर देखो, यह ही इनका आदर है। तब मैं जाग गया और मुझे दुबारा निर्विकल्पदशा हुई।

मङ्गल समर्पण

हे भाई! तू किसी प्रकार, महा कष्ट से अथवा मरकर भी तत्त्वों का कौतूहली होकर, इस शरीरादि मूर्तद्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी होकर, आत्मा का अनुभव कर कि जिससे अपने आत्मा को विलासरूप, सर्व परद्रव्यों से भिन्न देखकर इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ एकत्व के मोह को तू शीघ्र ही छोड़ देगा।

– **आचार्य अमृतचन्द्र**

प्रात:काल होने पर मेरी स्त्री ने कहा — न तो स्वयं सोते हैं और नहीं दूसरों को सोने देते हैं, इनको तो भूत चिपटाया है।

(58) एक बार मेरे मन में विचार आया कि 'आत्मा का कार्य, उपयोगरूप है, अन्य नहीं — ऐसा सम्पूर्ण शास्त्र बतलाते हैं।' अत: मैं सब जगह जाकर यह बात बताऊँ तो सबको आनन्द हो। इसके लिए मैं प्रथम बार सिकन्द्राबाद गया, वहाँ पर लोग मुझे अच्छी तरह जानते थे। मैंने वहाँ पर पहले स्कूल के लिए चन्दा इकट्ठा कराने में भूख हड़ताल भी की थी, लेकिन उन लोगों के हृदय में यह बात बैठी थी कि 'देखो, यह तो जैनधर्म छोड़ गया है, किसी ढ़ोंगी के चक्कर में पड़ गया है; इसलिए मेरे पास कोई नहीं आया, तब मैंने आगे जाने का विचार रोक दिया।

(59) सोनगढ़ में जब मैं जाता तो वहाँ के रहनेवाले और बाहर से आनेवाले कितने ही भाइयों का कहना था कि तुम कानजीस्वामी के पैर छूते हो — यह ठीक नहीं, लेकिन — मैंने कहा तुम गलती पर हो। आखिरकार कुछ वर्षों में उन्हें अपनी गलती महसूस हुई।

(60) एक बार सात बजे करीब सोनगढ़ में नाले पर बैठे-बैठे निर्विकल्पता आई।

(61) **हे परमपूज्य गुरुदेव!** 1956में निर्विकल्पता के बाद (स्वप्न में) आपका प्रवचन चल रहा था, मुझे आपके प्रति अत्यन्त बहुमान का भाव था। प्रवचन में बैठे-बैठे मानो आपने कहा कि गुरु -दक्षिणा लाओ और गुरु-दक्षिणा में मुझे तुम्हारी गर्दन चाहिए तो मैंने उसी समय काटकर आपके चरणों में पेश कर दी।

(62) **हे परमपूज्य गुरुदेव!** मैंने आपको (स्वप्न में) सोनगढ़ में भावलिङ्गी मुनि को आहार देते हुए स्वयं देखा है। आप स्वयं आहार के लिए जा रहे थे। इतने में आपको मालूम हुआ कि भावलिङ्गी मुनि पधारे हैं तो आपने उन्हें आहारदान दिया।

(63) एक बार स्वप्न में मैंने देखा कि आप समवसरण में तीर्थङ्कर के रूप में विराजमान हैं और मैं मुनिदशा में हूँ। उसके बाद मैं भी आपके साथ-साथ निर्वाण को प्राप्त हुआ।

(64) **हे परमपूज्य गुरुदेव!** एक बार स्वप्न में मैं (स्वयं) मुनिदशा में किसी

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

शहर में आहार लेने गया, वहाँ मुझे शङ्का हो गई कि यह मेरे निमित्त बना है तो तत्काल जङ्गल में जाकर नदी किनारे अपने आप (स्वरूप) में लीन हो गया। नींद खुली तो उस समय चार बजे का समय था।

(65) **हे गुरुदेव!** कोई चार साल से मुझे ऐसा लगता है कि शरीर की स्थिति पूरी होनेवाली है, यहाँ से दूसरे स्वर्ग में जाना है। लेकिन मुझे स्वर्ग की चाह नहीं है, स्वभाव में ही रहने की एकमात्र भावना है; अन्य नहीं। कई बार ऐसा ख्याल आया कि अमुक दिन शरीर छूटेगा तो मैंने अपने घरवालों को भी नहीं बताया, आनन्द से स्वभाव का आश्रय वर्तता रहा।

(65) **हे परम कृपालु!** मैं ज्यादा आपके समक्ष क्या कहूँ? संसार में जितने भी ज्ञानी हैं, उनकी दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर होती है। अज्ञानियों को संसार के कार्यों में वर्तता दखे तो भी वह ज्ञानी अपने में ही वर्तता है।

(66) **हे परमपूज्य!**

आपका फरमान है — 'एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का नहीं कर सकता है। एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं। एक गुण, दूसरे गुण का कुछ नहीं कर सकता है। प्रत्येक गुण में प्रति समय एक पर्याय होती है। एक पर्याय, दूसरी पर्याय का कुछ नहीं कर सकती।' इतनी बातें विचार में आते ही दृष्टि स्वभाव पर आए, आत्मा का अनुभव हो तो आपका प्रवचन सुना कहा जाए।

(67) जब ज्ञान-ज्ञेय स्वभाव की किताब छपी, उसमें आपके 308 से 311 गाथा पर 13 प्रवचन छपे। उस समय सेठियाजी भी मौजूद थे। बाद के दिनों में आपने क्रमबद्धपर्याय पर अलौकिक प्रवचन किए। **हे गुरुदेव! आपके एक-एक प्रवचन में, संसार समाप्त करके सम्यग्दर्शन पाकर पूर्णता कैसे प्राप्त करे, आता है — ऐसा पात्र जीव जानते हैं।**

(68) अज्ञानी लोग कहते हैं कि आपके प्रवचन में रोज आत्मा की बात आती है, और कुछ नहीं। लेकिन मेरे विचार में जो तीर्थङ्कर भगवान की दिव्यध्वनि में आता है, वही सब आपके प्रवचन में आता है। अरे! दिव्यध्वनि में इससे ज्यादा क्या आता होगा?

(69) आपने मुझ पागल को मोक्ष का पथिक बनाया। मैं आपका किस विधि से स्वागत करूँ। आपका पूर्ण स्वागत, अपने से परिपूर्ण स्थिरता ही है।

(70) **हे पूज्य गुरुदेव!** एकमात्र भावना अपने में स्थिर होने की है। जब तक वह स्थिरता, नहीं हो पाती, तब तक सारा संसार, ज्ञान का ज्ञेय है। चतुर्थ

हे भव्य! तुझे अन्य व्यर्थ ही कोलाहल करने से क्या लाभ है? तू इस कोलाहल से विरक्त हो और एक चैतन्यमात्र वस्तु को स्वयं निश्चल लीन होकर देख; ऐसा छह मास अभ्यास कर और देख कि ऐसा करने से अपने हृदयसरोवर में, जिसका तेज-प्रताप-प्रकाश पुद्गल से भिन्न है, ऐसे उस आत्मा की प्राप्ति नहीं होती है या होती है?

– **आचार्य अमृतचन्द्र**

गुणस्थानवर्ती जितना जानता है, उतना ही सिद्ध भगवान जानते हैं। मात्र प्रत्यक्ष–परोक्ष का भेद है।

(71) **हे परमपूज्य गुरुदेव!**

आपके चरणों में अगणित नमस्कार! मैं यह बात कई बार आपसे कहना चाहता था, परन्तु आपको बताने से सब जगह ढिंढोरा पिट जाएगा; इसलिए नहीं बताया। अब मेरे से नहीं रहा गया, अपने तारणहार को अपना पता देना आवश्यक समझा। मुझे किसी से मानादि की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो हमेशा अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का भान रहता है। शरीर या राग का माहात्म्य, आपकी कृपा (निमित्त) से उड़ गया।

जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!! जय गुरुदेव!!

आपके चरणों का दास

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री ॥

दिनाँक 31-5-1968

हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव! शतबार वन्दन!

प्रश्न – शान्ति कैसे आवे?

उत्तर – एकमात्र त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आश्रय के बिना, जीवन में शान्ति नहीं आ सकती है। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–तप की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होनी है; पर के आश्रय से, राग के, आश्रय से कभी भी नहीं, ऐसा आपका महामन्त्र है।?

श्री भाई खेमचन्द्रजी के शब्दों में —

(1) पर का अस्तित्व है, उससे दृष्टि उठाओ।

(2) विकारीभाव का अस्तित्व है, इससे भी दृष्टि उठाओ।

(3) अपूर्ण–पूर्ण शुद्धपर्याय से भी दृष्टि उठाओ।

(4) एकमात्र त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित–तप की प्राप्ति होती है; अत: उसी पर दृष्टि जमाओ।

आपके चरणों का दास

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

हे अन्ध प्राणियों! अनादि संसार से लेकर पर्याय-पर्याय में यह रागी जीव, सदा मत्त वर्तते हुए, जिस पद में सो रहे हैं, वह पद, अर्थात् स्थान अपद है- अपद है, अर्थात् तुम्हारा स्थान नहीं है - ऐसा तुम समझो। इस ओर आओ - इस ओर आओ, अर्थात् यहाँ निवास करो; तुम्हारा पद यह है-यह है! जहाँ शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु निज रस की अतिशयता के कारण स्थायीभावत्व को प्राप्त है, अर्थात् स्थिर है- अविनाशी है।

- आचार्य अमृतचन्द्र

॥ श्री ॥

दिनाँक 14-6-1968

हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

आपको शत शत नमस्कार।

प्रश्न - रुपया-पैसा देने की क्रिया, बाहरी रोटी न खाना आदि क्रिया से धर्म होता है या पुण्य या पाप होता है ?

उत्तर - जो रूपी क्रिया होती है, वह पुद्‌गल की ही है, उससे आत्मा के धर्म, पुण्य, पाप का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

हे पूज्य गुरुदेव! अनादि से तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि में आया है कि अशुद्धभाव से पुण्य-पाप और शुद्ध भाव से धर्म होता है; बाहरी क्रिया से इन तीनों में से कुछ भी नहीं।

(1) बाहरी क्रिया, पुद्‌गल की है, इससे मुझे लाभ है या नुकसान है — ऐसी मान्यता महान मिथ्यात्व है।

(2) बाहरी क्रिया से तो कुछ संसार-मोक्ष का सम्बन्ध ही नहीं है। अशुभभाव से पाप; शुभभाव से पुण्य; शुद्धभाव से धर्म होता है। योगसार से आया है :—

बन्ध-मोक्ष परिणाम से, कर जिन-वचन प्रमान।
अटल नियम यह जानकर, सत्य भाव पहिचान॥14॥

प्रश्न - हे पूज्य गुरुदेव! संसार में सब जगह प्रायः ऐसा देखने - सुनने में आता है कि बाहरी क्रिया करो — ऐसे खाओ, ऐसे पियो, ऐसे पूजा करो, ऐसे पाठ करो, जङ्गल में बैठकर शरीर को सुखाओ, महीनों-महीनों रोटी न खाओ, जितना ज्यादा रुपया दान दोगे तुम्हारा भला होगा, अट्ठाईस मुलगुण का पालन करो, बारह अणुव्रतों का पालन करो तो क्रम से मोक्ष हो जाएगा - क्या यह बात गलत है ?

उत्तर — जो बाहरी क्रिया है, इससे तो धर्म का किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं है। वास्तव में अपने स्वरूप का भान होने पर, 'मैं आत्मा हूँ, मेरा कार्य ज्ञान है' — ऐसा अनुभव में आता है। सबसे प्रथम निर्विकल्पदशा होती है, वह निर्विकल्पदशा का थोड़ा ही समय है। सविकल्पदशा में चौथे गुणस्थान में अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव में ही रहने की भावना है। न रहने पर, सच्चे देव-गुरु-धर्म

के प्रति राग आता है। ज्ञानी उस राग को क्लेशरूप जानता है, हेय जानता है; वह भाव, पुण्यभाव है।

उसे पुण्यभाव का और बाहरी क्रिया का समय एक है, अज्ञानी को उसकी स्वतन्त्रता का पता नहीं है; इसलिए वह बाहरी क्रिया, देव-गुरु-शास्त्र की पूजा आदि को धर्म मान लेता है, सम्यग्दर्शन मान लेता है, जो कि मिथ्या है, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प को या उस समय होनेवाली बाहरी क्रिया को जो चरणानुयोग में सम्यग्दर्शन कहा है, वह निमित्त की अपेक्षा कथन किया है। निमित्त की अपेक्षा कथन इसलिए किया है कि इस चौथे गुणस्थान की भूमिका में इसी प्रकार का राग आता है; अन्य प्रकार का नहीं -यह बताने को इसको व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है।

प्रश्न - क्या देव गुरु शास्त्र का राग, सम्यग्दर्शन नहीं है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं; यह व्यवहार कथन है, इसका अर्थ 'ऐसा नहीं है, निमित्त की अपेक्षा उपचार किया है' — ऐसा जानना चाहिए। देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन नहीं है; सम्यग्दर्शन तो अपना अनुभव है — ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न - देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन मानें, आत्मा की बात ना सुनें तो ?

उत्तर— वह जिनवाणी सुनने के लिए अयोग्य है क्योंकि उसने व्यवहार के कथन को निश्चय का कथन मान लिया है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय में भगवान अमृतचन्द्राचार्यजी ने '**तस्य देशना नास्ति**' अर्थात्, जो व्यवहार के कथन को निश्चय का कथन मानता है, उसके लिए भगवान की वाणी नहीं है — ऐसा कहा है।

मोक्षमार्ग-प्रकाशक में बताया है — जो व्यवहार के कथन को, निश्चय का कथन मानता है, उसके सब धर्म के अङ्ग मिथ्यात्वभाव को प्राप्त होते हैं।

श्रीसमयसारजी में व्यवहार के कथन को निश्चय का कथन माननेवाले को मिथ्यादृष्टि कहा है। इसलिए देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान करना ही सर्वथा (एकान्ततः) सम्यग्दर्शन है — ऐसा जिसका अभिप्रायः है, वह जैनमत से बाहर है।

इसी प्रकार पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी कषाय का अभाव है, उसके साथ बारह अणुव्रतादि का रागभाव आता है। वह रागभाव, पाँचवें गुणस्थानवर्ती

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

क्लेशरूप जानता है। उसका वह भाव, पुण्य है। उस पुण्यभाव के साथ बाहरी क्रिया देखने में आती है, वह पुद्‌गल की स्वतन्त्र क्रिया है। अज्ञानी को आत्मा की शुद्धि का पता नहीं है; अत: वह बाहरी अणुव्रतादि को श्रावकपना मान लेता है, जो कि मिथ्या है।

इसी प्रकार छठवें गुणस्थान में तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप शुद्धि प्रगट होने पर अट्ठाईस मुलगुण पालन आदि विकल्प होता है। मुनि उसे महाक्लेश कलंकरूप मानते हैं। उसका अभाव नियम से कर देते हैं। उस भाव को पुण्यभाव कहते हैं। उसके साथ पुद्‌गल की स्वतन्त्र क्रिया-बाहरी समिति, गुप्ति आदि होती है। अज्ञानी को शुद्धि का तो पता ही नहीं होने से, वह बाहरी अट्ठाईस मुलगुणों को ही मुनिपना मान लेता है, जो कि मिथ्या है।

वास्तव में अपने स्वरूप का भान होने पर, चौथे-पाँचवें- छठवें गुणस्थान में ऐसी-ऐसी बाहरी क्रिया होती है, उन्हें चरणानुयोग में श्रावक-मुनिपना आदि, निमित्त की अपेक्षा कथन किया है, उसका अर्थ 'ऐसा है नहीं' — ऐसा जानना चाहिए।

साधक को अपनी-अपनी भूमिका में इस प्रकार का राग आने पर, रुपया देना, दान देना, रोटी न खाना आदि बाहर से देखने में आता है। यह निमित्त का निमित्त देखकर उपचार किया है। जो उपचार को, अनुपचार मान लेता है, वह उपदेश के योग्य नहीं है। —ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में आ गया है।

इसलिए याद रखो :- बाहरी क्रिया पुद्‌गल की है, उससे पुण्य-पाप-धर्म कुछ भी नहीं है।

अशुभभाव से पाप है; शुभभाव से पुण्य है; शुद्धभाव से धर्म है।

इसलिए पात्र जीव को पर से, विकारी भाव से लक्ष्य हटाकर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर सन्मुख होकर, अपना अनुभव करके-लीनता करके, मोक्ष प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है।

अहो! पूज्य गुरुदेव! आपने वर्तमान से यह बतलाकर, भाव से ही बन्ध और मोक्ष है; बाहरी क्रिया से नहीं —जैसे, साक्षात् चौथे काल में सीमन्धर भगवान विराजमान हैं, उसी प्रकार सोनगढ़ में आपने अद्‌भुत कार्य किया है; इसके लिए मुमुक्षु आपको शत-शत प्रणाम करते हैं।

आपका सेवक

कैलाशचन्द्र जैन

मङ्गल समर्पण

जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो आत्मा अनुपम ज्ञान के आधीन है, जो सहजगुणमणि की खान है, जो सर्व तत्त्वों में सार है और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।

- मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

॥ श्री ॥

दिनाँक 15-6-1968

हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

मैं आपको शत-शत वन्दन करता हूँ।

वस्तुतः यह भी निमित्त का कथन है। पात्र जीव जब अपनी आत्मा का आश्रय लेकर धर्म प्रगट करता है तो उस समय निमित्त कैसा होता है? उसका ज्ञान कराया है।

शत-शत वन्दन, अर्थात? अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव में परिपूर्ण रहने की भावना होने पर भी, न रह रुकने पर, जो ज्ञानी जीव उन्हें देखकर कि इन्होंने अपने में आनन्ददशा प्राप्त करी है, मैं भी अपने में रहकर प्राप्त करूँ — ऐसे विकल्पों को भी हटाकर, निर्विकल्पतादशा प्रगट करे, वह शत-शत वन्दन है।

प्रश्न – गुरु की, भगवान की वन्दना क्या है?

उत्तर – अपने अन्दर जैसा गुरु कहते हैं, उस प्रकार प्रगट करना, वह गुरु की वन्दना है। जैसा भगवान कहते हैं, उस प्रकार अपने अन्दर प्रगट करना, भगवान की वन्दना है। अपने अन्दर सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, पञ्च परमेष्ठी का आदर भी नहीं हो सकता है क्योंकि अपने को अपना अनुभव हुए बिना पूजा, भक्ति, दान, यात्रा सब व्यर्थ है। अपना अनुभव-ज्ञान बर्तने पर, साधक जीव को पूजा-भक्ति-दान -यात्रा आदि का विकल्प आता है, ज्ञानी उसे हलाहल जहर मानते हैं; उसे छोड़कर अपने में परिपूर्ण लीन होना चाहते हैं। ज्ञानी इस भाव का अभाव करके, नियम से शुद्ध में आ जावेंगे, इस अपेक्षा से ज्ञानी के शुभभाव को निमित्त की अपेक्षा धर्म कहा जाता है।

कहने में धर्म कहा जाता है, परन्तु धर्म है नहीं। शुभभाव, ज्ञानी को हो या अज्ञानी को, दोनों को बन्ध का कारण है। ज्ञानी, शुभभाव का अभाव करके शुद्ध में आ जावेंगे, इस अपेक्षा ज्ञानी के शुभभाव को शास्त्रों में कहीं-कहीं परम्परा मोक्ष का कारण कहा जाता है। अज्ञानी का बड़े से बड़ा शुभभाव, परम्परा निगोद का कारण है क्योंकि अज्ञानी, शुभभाव को शुद्ध का कारण जानता है, उसे धर्म मानता है और ज्ञानी, शुभभाव को हलाहल जहर, हेय मानता है; इसलिए अपनी आत्मा का अनुभव-ज्ञान होने पर ही भक्ति आदि का, गुरु आदि के विनय का भाव आता

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

है। वह भाव भी ज्ञानी नहीं चाहते हैं — यह शत-शत वन्दन का तात्पर्य है।

प्रश्न - अपना अनुभव ना हो और शास्त्राभ्यास करें, पूजा करें, यात्रा करें, बेले-तेले (उपवास) आदि करे तो क्या धर्म प्राप्ति हो जावेगी?

उत्तर - जैसे छोटा बच्चा है, उसे अ-आ पढ़ाने के लिए वह कितने उपवास करें कि उसे पढ़ना आ जावे? कितना दान करे तो उसे पढ़ना आ जावे? तो आप कहेंगे —कभी भी नहीं आ सकता है। उसी प्रकार आत्मा का अनुभव करने के लिए यात्रा करे, माला फेरे, शास्त्राभ्यास करे, पूजा करे तो कभी भी नहीं हो सकता है। मात्र भेदविज्ञान से ही आत्मा, अनुभव में आता है; इसलिए पात्र जीव, पर से दृष्टि उठाकर, राग-विकार से दृष्टि उठाकर, अपनी आत्मा का आश्रय ले तो अपने आत्मा का पता चले।

प्रश्न - बड़े-बड़े द्रव्यलिङ्गी मुनि, बड़ी-बड़ी तपस्या करते हैं, यम-नियम संयम पालते हैं, क्या वह आत्म-अनुभव में मदद नहीं कर सकती है?

उत्तर - बिल्कुल नहीं! जैसे, कोई देहली जाने के लिए, अलीगढ़ की सड़क पर चल दे तो कभी देहली नहीं पहुँच सकता; उसी प्रकार आत्मा का अनुभव करने के लिए यम-नियम-संयम करे तो कभी आत्म अनुभव नहीं कर सकता है, उलटा और संसार बढ़ जाता है।

प्रश्न - द्रव्यलिङ्गी मुनि कुछ तो अच्छा होगा?

उत्तर - उसे प्रवचनसार में कुन्दकुन्द भगवान ने संसार का नेता कहा है क्योंकि द्रव्यलिङ्गी को शुभभाव करने का अभिप्राय पाया जाता है, श्रद्धान में उसे अच्छा मानता है। श्रद्धान की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि से भी इसके अधिक कषाय है। द्रव्यलिङ्गी के सर्वघातिकर्मों का बन्ध बहुत अनुभाग-स्थिति सहित होता है और असंयत व देशसंयत सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व, अनुन्तानुबन्धी आदि कर्मों का बन्ध है ही नहीं, बाकी का जो बन्ध होता है, वह अल्प स्थिति-अनुभागसहित होता है; इसलिए द्रव्यलिङ्गी मुनि को शास्त्रों में असंयत, देशसंयत से भी हीन कहा है। द्रव्यलिङ्गी के जप-तप-शील-संयमादि क्रियाएँ होती हैं, उन्हें अकार्यकारी कहा है। समयसारजी में कहा है कि 'जिनवर प्ररुपित व्रत, समिति, गुप्ति ऊवरु तप-शील को करता हुआ भी अभव्य जीव, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है॥ 273॥' अज्ञानी के व्रत-तपादि को बालव्रत, बालतप कहा जाता है; इसलिए अज्ञानी का देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग-भक्ति, पूजा आदि सच्चे नहीं

निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले तथा भव से और भोग से पराङ्गमुख हुए, हे यति! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस ध्रुव पद को भज; अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है?

- मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

होते हैं क्योंकि यह तो पाँचवें-छठवें गुणस्थान में अपनी-अपनी भूमिकानुसार शुभभावरूप से होते हैं'।

प्रश्न – तो शुभभाव नहीं करना चाहिए?

उत्तर – शुभभाव का निषेध नहीं हैं। शुभभाव को, शुभभाव, संसार का कारण जानो; मोक्ष का कारण मत जानो। यदि शुभभाव को संसार का कारण जानोगे तो उसके अभाव का अवसर है। यदि शुभभाव को मोक्ष का कारण जानोगे तो उसे अभाव का अवसर नहीं है; इसलिए जब तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हो, तब तक शुभभाव में चलो, परन्तु उस शुभभाव को हेय और बन्ध का कारण जानो; मोक्ष का कारण मत जानो — यह भगवान की दिव्यध्वनि की सार है,

हे पूज्य गुरुदेव!

आप भी शुभभाव को संसार का कारण बतलाते हुए और शुभभाव को अभाव करके पात्र जीवों को मोक्ष का कारण शुद्धभाव है, उसमें आने की निरन्तर प्रेरणा देते हो; इसलिए पात्र जीव आपको शत-शत वन्दन करते हैं।

आपका सेवक

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

॥ श्री ॥

समय - प्रातःकाल **दिनाँक 23-6-1968**

परम पूज्य करुणानिधान पूज्य गुरुदेव!

अगणित नमस्कार!

प्रश्न - पूज्य गुरुदेव! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का क्या रहस्य है ?

उत्तर - यह जैनधर्म का महामन्त्र है। जो इस मन्त्र का रहस्य जान गया, उसे सम्पूर्ण जिन रहस्य का पता चल गया और वह भगवान की श्रेणी में आ गया; उसके पाँच परावर्तनरूप संसार का अभाव हो गया, संसार के कारणभूत मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव हो गया — ऐसा यह महामन्त्र है।

अपनी अवस्था के उत्पाद का आधार, द्रव्य स्वयं ही है; अन्य किंचित्मात्र भी नहीं। पूर्व अवस्था का जाना, नवीन अवस्था का होना और द्रव्य का एकरूप ध्रुव रहना —ऐसा वस्तुस्वभाव है; इसके अतिरिक्त किसी भी द्रव्य में अनादि-अनन्त कुछ नहीं होता है।

इसलिए हे आत्मा! तेरा उत्पाद प्रति समय तेरे ही आधीन है। तू अपने द्रव्य-भगवान की ओर देख, तो तेरी पर्याय का उत्पाद, द्रव्य जैसा प्रगट हो और जीवन में शान्ति प्राप्त हो, अनन्त जन्म-मरण की समाप्ति हो।

'**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्**' का स्वरूप समझकर, परद्रव्यों का लक्ष्य छोड़कर, स्वद्रव्य की दृष्टि करना ही इस महामन्त्र का समझना है।

इस मन्त्र को समझते हुए अनादि काल की पर मैं कर्ता-भोक्ताबुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाता है, अपना आत्मा क्या है ? — इसका पता चल जाता है।

इस महामन्त्र का रहस्य समझते हुए चौथे गुणस्थान से लेकर, सिद्धदशा तक का पता चल जाता है और मिथ्यादृष्टि क्यों दुःखी है ? — इसका पता चल जाता है।

इस महामन्त्र को समझते ही निमित्त-नैमित्तिक क्या है? निश्चय-व्यवहार क्या है ? हेय-उपोदय-ज्ञेय क्या है ? छह द्रव्य क्या हैं ? नव पदार्थ क्या हैं - यह पता जाता है। पञ्च परमेष्ठीपना मेरे स्वभाव में है, उसी में से आयेगा — यह पता चल जाता है।

इस महामन्त्र का रहस्य जानते ही, किसी भी परद्रव्य का, किसी के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, यह ख्याल में आ जाता है।

मङ्गल समर्पण

मेरा ऐसा मंतव्य है कि आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है; आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी आत्मा से पृथक् है; और काल-क्षेत्रादि जो हैं, वे भी आत्मा से पृथक् हैं। निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं, अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं।'

- आचार्य पद्मनन्दिदेव

जब ज्ञानी अपने स्वरूप में नहीं रह सकता तो पात्र जीवों को यह रहस्य बताने का विकल्प आता है। यह महामन्त्र दिव्यध्वनि का सार है।

इस मन्त्र का रहस्य जाने बिना, जीवन नारकी जीवन है; इसलिए पात्र जीव को इसका रहस्य जानकर पूर्ण वीतरागता प्रगट कर, मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बनना चाहिए; स्त्री पुत्रादि का नाथ नहीं बनना चाहिए।

—ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का रहस्य बतानेवाले वर्तमान में आप (पूज्य कानजीस्वामी) ही मुझे दृष्टिगोचर हो रहे हैं; इसलिए मैं उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

आपका सेवक

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

॥ श्री ॥

समय - प्रातःकाल **दिनाँक 24-6-1968**

परम पूज्य करुणानिधान पूज्य गुरुदेव!

अनन्तान्त नमस्कार॥

प्रश्न - देव-गुरु-शास्त्र के आगे हाथ जोड़ना, स्तुति का उच्चारण, परजीव को बचाने की क्रिया, सत्य बोलने की क्रिया, चोरी न करने की क्रिया, कुशील न सेवन करने की क्रिया, परिग्रह न रखने की क्रिया, सामायिक बैठकर णमोकारमन्त्र बोलने की क्रिया, गुरु-अतिथि को आहार देने की क्रिया, मुनि के बाह्य (बाहरी क्रिया जो दिखती है) महाव्रतादि की क्रिया, धर्म-पुण्य की कारण है या नहीं ?

उत्तर - जो शरीर की क्रिया है, वह पुद्गल का परिणमन है; उससे धर्म, पुण्य, पाप का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। शरीर की क्रिया से मुझे लाभ है या नुकसान है ? — ऐसा भाव सबसे बड़ा पाप, मिथ्यात्व है।

प्रश्न - शरीरादि को मैं करता हूँ - यह मिथ्यात्व क्यों है ?

उत्तर - जो अपना कार्य नहीं है, उससे अपना सम्बन्ध मानना, मिथ्यात्व है।

प्रश्न – ऐसी शरीरादि की क्रिया ज्ञानियों को भी होती हैं, वह क्या है ?

उत्तर – वास्तव में अपनी आत्मा का अनुभव होने पर, चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थान में जब ज्ञानी अपने स्वरूप में निर्विकल्पता नहीं होती है तो उनको शुद्धपरिणति के साथ देव-गुरु-शास्त्र का राग, अणुव्रतादि का भाव और महाव्रतादि का विकल्प अपनी-अपनी भूमिकानुसार आता है। ज्ञानी उस विकल्प को महान अनर्थकारी जानते हैं; उसको उलंघ कर अपने स्वभाव में ही रहना चाहते हैं। तब उस विकल्परूप पुण्यबन्ध के भाव का और बाहरी क्रिया का स्वतन्त्र निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। उस शरीरादि की क्रिया का ज्ञानियों के साथ एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध होता है, ज्ञानी उसके ज्ञाता है और जो विकल्प आता है, वह भी परद्रव्य है। ज्ञानी, बाहरी क्रिया और शुभविकल्पों के मात्र ज्ञाता हैं। अज्ञानियों को इस स्वतन्त्रता का पता नहीं है; इसलिए वे कहते हैं कि शरीरादि की क्रिया, ज्ञानी भी करते हैं। याद रहे —शरीरादि की क्रिया, ज्ञानी-अज्ञानी कोई भी नहीं कर सकता, मात्र अज्ञानी, शुभाशुभविकल्प करता है, उसका मालिक बनाता है; ज्ञानी तो मात्र अपने स्वभाव का मालिक है, उसकी दृष्टि अपने स्वभावभाव पर होती है तो उस समय शुद्धपर्याय प्रगट होती है। ज्ञानी की दृष्टि, शुद्धपर्याय पर भी नहीं होती है।

इसलिए जिसे अपना कल्याण करना हो, उसे पर से, विकार से, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय से दृष्टि उठाकर, अपने ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि देकर अपना अनुभव करके, पूर्ण वीतरागता प्राप्त करना चाहिए, तभी कल्याण है।

प्रश्न – क्या व्रतादि-अणुव्रतादि-महाव्रतादि के शुभभावों से भी कल्याण नहीं है ?

उत्तर – शुभभावों से कल्याण होता है — जो ऐसी मान्यता करता है, वह अनन्त महामिथ्यात्व है, सबसे बड़ा पाप हैं।

प्रश्न – तो अणुव्रतादि-महाव्रतादि से भी धर्म का सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं है, क्योंकि यह तो ज्ञानियों को अस्थिरता के कारण आ जाता है, इसे ज्ञानी हलाहल जहर मानते हैं, और जो उनसे धर्म का सम्बन्ध मानता है, उसका संसार परिभ्रमण कभी भी समाप्त नहीं होगा, वह चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ अपनी अनादि की जगह, निगोद में चला जाएगा। इसलिए पात्र जीव को ज्ञानियों को समागम करके, धर्म का रहस्य समझकर, अपना कल्याण करना

मङ्गल समर्पण

जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ? वास्तव में उनमें कुछ भी भेद, अर्थात् अन्तर नहीं है।
– **मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव**

चाहिए। ज्ञानियों का समागम निमित्त की बात है। वास्तव में ज्ञानी का समागम, अर्थात् अपनी त्रिकाली आत्मा का अनुभव करके, अपना कल्याण करना चाहिए। याद रखो —बाहरी क्रिया से, शुभाशुभभावों से, धर्म का सम्बन्ध नहीं है; धर्म का सम्बन्ध एकमात्र त्रिकाली ज्ञायक आत्मा के आश्रय से ही है, हुआ है, और होगा; अन्य और किसी भी प्रकार नहीं है।

जय गुरुदेव-जय गुरुदेव

आपका सेवक

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री ॥

समय - प्रातःकाल **दिनाँक 26-6-1968**

हे परमकृपालु करुणानिधान पूज्य गुरुदेव!

अगणित नमस्कार।

जन्म मरण इकला करै, सुख-दुःख भौगे एक।
नरक गमन पण एकला, मोक्ष जाय जीव एक॥

अहो! जन्म-मरण में जीव अकेला है; सुख-दु:ख अकेला ही भोगता है, नरक गमन भी अकेला ही करता है और मुक्ति में अकेला ही जाता है, तब फिर कौन किसका साथी है? कोई किसी का साथी नहीं है, न कोई किसी का साथी था, और न कभी किसी का कोई साथी होगा, क्योंकि अनादि-अनन्त (अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त से अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म आकाश एक-एक, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालाणु) वस्तुएँ जुदी-जुदी अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमन करती हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं है — ऐसा वस्तु स्वभाव है; तब फिर किस की ओर देखना रहा? एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर ही देखना रहा। ऐसे वस्तुस्वभाव की स्वतन्त्रता बतानेवाले अनादि से तीर्थङ्करों के समान आपको, मैं प्रणमन (नमस्कार) करता हूँ। आपका आदर, चौबीस तीर्थङ्करों का आदर है, पञ्च परमेष्ठी का आदर है क्योंकि जो अनादि से तीर्थङ्कर भगवान कहते आये हैं, वही आप सोनगढ़ से कह रहे हैं। आपके प्रति अनादर का भाव, भगवान के प्रति अनादर, पञ्च परमेष्ठी के प्रति अनादर, अपनी आत्मा का अनादर है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

हे प्रभु! मैं आपके चरणों में आने से पहिले महापापी था। पर से, भगवान से, शुभभाव से, बाहरी क्रिया से अपना कल्याण मानता था और मुझे उपदेश देनेवाले भी ऐसे ही मिले, लेकिन आपके उपदेश से (निमित्त) मेरा उपादान जागा; और ऐसा जागा कि आपने मेरा जन्म-मरण का अभाव कर दिया; इसलिए मैं आपको शत-शत वन्दन करता हूँ। (यह निमित्त की बात है)। प्रभु! मैं सोचता हूँ कि मैं पहले कितना पागल था? उसका वर्णन नहीं हो सकता है। उस पागलपन मिटाने में वर्तमान में आप ही दृष्टिगोचर होते हैं; अन्य नहीं — ऐसा मेरी दृष्टि में है।

वैसे तो भावलिङ्गी मुनि, पञ्चम काल के आखिर तक होंगे — ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में आया है लेकिन मुझे वर्तमान में दिखायी नहीं देते हैं।

हे पूज्य गुरुदेव! मुझे अपने में ही रहने को मुनिपने का भाव आता है लेकिन मुनिपने योग्य शुद्धि प्रगट न होने के कारण असमर्थ पाता हूँ। यह मेरा ही दोष है। भावना यह है कि अभी तत्काल ही अपने में परिपूर्ण लीनता करूँ, लेकिन हो नहीं रही है। यह मेरा बड़ा अपराध है। मुझे सब मालूम है — कैसे स्थिरता होती है? मुनिपना क्या है? श्रेणी क्या है? अरहन्त-सिद्ध क्या है? क्योंकि वह अपने में ही भरी हुई है; कहीं बाहर से नहीं आनी है। दूसरे की मदद की जरा भी आवश्यकता नहीं है। मेरा कमजोर पुरुषार्थ आगे बढ़ने में बाधक है।

तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्याय अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य बिहार कर, न बिहार कर पर द्रव्य में॥412॥

श्रीसमयसारजी॥

अहो! अपने कल्याण के लिए किसी भी जीव को पर की, शुभभाव की जरा भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि कल्याण अपने त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से ही होता है और वह सबके पास अनादि अनन्त मौजूद है।

हे प्रभो! सबके पास अनादि-अनन्त भगवानपना होने पर भी, जीव की पर्याय में विकार है, वह अपना ही अपराध है। जब जीव में अपराध होता है तो वहाँ निमित्तरूप जड़कर्म भी होता है लेकिन कर्म, विकार नहीं कराता है — ऐसा औदायिकभाव बताता है।

जीव, अनादि से विकार करता आ रहा है, वह जड़ नहीं हो जाता है, क्योंकि ज्ञान-दर्शन-वीर्य का उघाड़ तो अंशत: रहता ही है — ऐसा क्षयोपशमिकभाव बताता है।

प्रगट वस्तु को अप्रगट क्यों बनाते हो? प्रगट वस्तु, अप्रगट नहीं हो सकती। पूर्व भूल से प्रगट वस्तु को अप्रगट माना था, इसलिए उसका अनादि दु:खरूप फल प्राप्त किया था; अब शरीर को आत्मा कैसे मानें? वह तो रक्त से, वीर्य से, सात धातुओं का बना हुआ, जड़, विजातीय, नाशवान तथा पर है। वह शरीर, मेरी चेतना नहीं है।

– **पण्डित दीपचन्द कासलीवाल**

सच्ची समझ करके जीव, पुरुषार्थ करे और अपनी आत्मा का आश्रय ले तो उपशमभाव की प्राप्ति होकर, क्षयोपशम-क्षायिक की प्राप्ति होकर, मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है — ऐसा पाँच भावों का स्वरूप आपने बताया, इसके लिए कौन मुमुक्षु का आपको शत् वन्दन ना होगा? अवश्य ही होगा।

हे प्रभु! नरक में भी अकेला ही दुःख भोगता है; पर के कारण किंचितमात्र नहीं। स्वर्ग में भी सांसारिक सुख कहते हैं, उसे भी अकेला ही भोगता है और मोक्ष में भी जीव अकेला ही है।

सब जगह अकेला, सब जगह अकेला ओहो! ऐसा भाव हो तो वह अपने को प्राप्त करे और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति करे।

योगसार में कहा है :—

आत्म भाव से आत्म को, जाणे तजी पर भाव।
जिनवर भाखे जीव ते, अविचल शिवपुर जाय॥

(रात्रि को यही चर्चा चली, प्रातःकाल यह पत्र लिखा।)

आपके चरणों का दास,
कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सोनगढ़
दिनाँक 7-1-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे पूज्य गुरुदेव!

वर्तमान में धर्म का विरह हो रहा था, आपने उस का पात्र जीवों को साक्षात् कराया; इसलिए पात्र जीव आपको नतमस्तक होता है।

नत-मस्तक आपको वही हुआ कहला सकता है, जिसने भावश्रुतज्ञान में अपने आपको अनुभव कर लिया हो। जिसको अपनी आत्मा का अनुभव नहीं, वह आपको नमस्कार के लायक नहीं है। वास्तव में तो ज्ञानी अपने आपको ही नतमस्तक होता है; ज्ञानी को अपने स्वभाव का निर्विकल्प अनुभव हुआ है, उसी

में रहना चाहता है। न रहा जाने पर यह भगवान, गुरुदेव आदि समस्त तीर्थङ्करादि देव-गुरु-शास्त्र, इस प्रकार पूर्णता को प्राप्त हुए हैं, मैं भी अपने स्वभाव में परिपूर्ण होऊँ —ऐसा विकल्प ज्ञानी को हेयबुद्धि से आता है, क्योंकि वह तो अपने स्वरूप में ही रहने का कामी है। सविकल्पदशा में ऐसा विकल्प, वह गुरुदेव का व्यवहार से बहुमान है। उस विकल्प को मिटाकर, अर्थात् अपना परिपूर्ण आश्रय करता है, वह तमाम देव-गुरु-शास्त्र का आदर है। **हे पूज्यश्री!** वर्तमान में मेरे विचार में आप ना होते तो आज जैनधर्म का लोप हो गया होता —ऐसा कहने में आता है।

प्रश्न - जैनधर्म क्या है ?

उत्तर - अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-स्थिरता ही जैनधर्म है। जब तक अपना अनुभव ना हो, तब तक जैनधर्मी नहीं है; विधर्मी हैं। द्रव्यलिङ्गी मुनि, जिसको शुक्ललेश्या तक हो जाती है, वह जैनधर्मी नहीं है; विधर्मी है। — ऐसा कुन्दकुन्द भगवान ने श्रीप्रवचनसार, गाथा 271 में कहा है। अनादि से अज्ञानियों ने मन्त्र जपना, मन्दिर में जाना, हाथ आदि क्रिया, शब्द उच्चारण, सामग्री चढ़ाना दान, दया आदि विकल्पों को जैनधर्म माना है। भगवान कहते हैं — जो पर से, शुभभाव से स्वप्न में भी जैनधर्म मानता है, वह जैनशासन का शत्रु है, क्योंकि जैनधर्म शुद्धभाव है; शुभाशुभभाव नहीं।

अहो! निगोद में भी जीव अकेला, द्विइन्द्रिय से लेकर द्रव्यलिङ्गी मुनि मिथ्यात्व अवस्था में भी जीव अकेला ही है। विचारो! मिथ्यात्व अवस्था में जीव, कर्ता-कर्म-करण, कर्मफल स्वयं ही है; कोई कर्म, शरीर, स्त्री, पुत्रादि नहीं है। और शुद्धदशा प्रगट करने स्थिरता करने, अर्थात् चौथे गुणस्थान, पाँचवें गुणस्थान, सातवें गुणस्थान - श्रेणी में अरहन्त अवस्था, सिद्ध अवस्था में भी कर्ता, कर्म, करण, कर्मफल, आत्मा ही है; अन्य जरा भी नहीं — ऐसा जाननेवाला क्या विकाररूप परिणमेगा? कभी नहीं। क्योंकि वह तो अपने भगवान आत्मा का कामी है। उसी में स्थिरता, वृद्धि, पूर्णता करता है और लीन होता हुआ क्रम से परिपूर्णता करके, मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न - क्या द्रव्यलिङ्गी मुनि, संसार अवस्था में तथा ज्ञानी, संसाररहित अवस्था में, जीव अकेला ही है — ऐसा नहीं जानता?

उत्तर - वास्तव में जब तक अपना अनुभव नहीं होता है, तब तक यह बात जीव के हृदय में नहीं बैठ सकती है। अनुभव हुए बिना यह बात कहेगा, लेकिन

मङ्गल समर्पण

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो सदा ऐसी मान्यता होती है कि कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं।

- मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

उसका कहना तोते के समान है; इसलिए सबसे प्रथम अनुभव करना, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न – वर्तमान में सम्यग्दर्शन प्राप्त होना मुश्किल है ?

उत्तर – ऐसा कहने का विचार अनन्त तीर्थङ्करों, गुरु, शास्त्र की विराधना है तथा अपनी आत्मा की विराधना करनेवाला आत्मघाती महापापी है, क्योंकि वर्तमान में पात्र जीव में इतनी शक्ति व्यक्त है कि वह सातवें गुणस्थान की दशा प्रगट कर सके। वैसे, त्रिकाली शक्ति तो सिद्ध बनने की भी है लेकिन वर्तमान में भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि पञ्चम काल में उत्पन्न जीव, सातवें गुणस्थान से ज्यादा पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा। इस अपेक्षा बात है। हमारे पास ज्ञान है –या तो उसे परपदार्थों में इष्ट–अनिष्ट मानने में लगा दो या अपने भगवान की ओर। — यह अपनी ओर नहीं लगाता, पर में अपनी बुद्धि लगाता है तो अनन्त संसार का पात्र बनता है; इसलिए, वर्तमान में सच्ची बात प्रगट हुई है — ऐसा जानकर, पात्र जीव को तुरन्त अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति, वृद्धि का निरन्तर उपाय करना चाहिए। वह उपाय, एकमात्र पर से, विकार से भला माना है; इस बुद्धि को हटाकर, अपने स्वभाव के सन्मुख करे तो विकार उत्पन्न ही नहीं होगा, तब भगवान का भक्त कहलावेगा।

प्रश्न – अपने आत्मा का अनुभव करने के लिए क्या करे तो, अवश्य आत्मा के अनुभव की प्राप्ति हो और क्या करे तो आत्मा के अनुभव की प्राप्ति कभी भी न हो ?

उत्तर – (1) संसार में अनन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, धर्म अधर्म आकाश एक–एक है लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं; इनसे मेरा किसी भी प्रकार से सर्वथा सम्बन्ध न है, न था, न होवेगा।

(2) मेरी आत्मा में जो अनादि से शुभाशुभ हैं, यह एक–एक समय करके अनादि के कहलाते हैं; वास्तव में मेरा संसार एक समय का है। वह मात्र मेरी मूर्खता के ही कारण है परवस्तु–द्रव्यकर्म, नोकर्म के कारण बिल्कुल नहीं।

(3) मैं स्वयं अनादि–अनन्त ज्ञायकस्वभावी हूँ और विकार एक समय का है — ऐसा जानकर जो अनादि से दृष्टि पर में जा रही है, उसके बदले अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर करे तो तुरन्त संसार का अभाव हो जाता है और ऐसा ना करे तो संसार का अभाव कभी भी नहीं होगा। मिथ्यात्व ही संसार है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

प्रश्न – मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर – परवस्तुओं में तथा शुभाशुभभावों में अपनत्वपने की बुद्धि, मिथ्यात्व है। मोह–राग–द्वेषरहित मेरी आत्मा का स्वभाव है — ऐसा जानकर, अपना आश्रय ले तो तुरन्तं ससार का अभाव हो जाता है, क्योंकि संसार अपनी मूर्खता से आप खड़ा किया है और आप ही स्वयं अपना आश्रय ले तो संसार का अभाव हो।

प्रश्न – द्रव्यलिङ्गी तो बहुत करता है, उसका संसार का अभाव क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर – मुनिव्रत धार अनन्तवार, ग्रीवक–उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लैश न पायो॥ छहढ़ाला॥

द्रव्यलिङ्गी मुनि ने अपनी आत्मा का आश्रय नहीं लिया; इसलिए उसका संसार का अभाव नहीं हुआ। उसने बल्कि उल्टा यम, नियम, संयमादि में ही समय को बरवाद किया; उसका फल एक–आध भव ग्रैवेयक का होकर निगोद है। मिथ्यादृष्टि को शुभ का बन्ध उत्कृष्ट 15 कोड़ा–कोड़ी का होता हैं; और त्रस की स्थिति दो हजार सागर से कुछ अधिक होती हैं, इतना लम्बा पुण्य भोगने का स्थान है नहीं। इसलिए उत्कृष्ट पुण्य का बाँधनेवाला, पुण्य को पाप में बदलकर, नियम से निगोद में चला जाता है जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिङ्गी मुनि है। द्रव्यलिङ्गी मुनि ने पुण्य को आदरणीय माना है। पुण्य को आदरणीय या पुण्य से धर्म का लाभ होगा – पुण्य करते–करते मोक्ष की प्राप्ति हो जावेगी — ऐसी मान्यतावाला, नामनिक्षेप से भी दिगम्बर नाम नहीं धराता; बल्कि विधर्मी नाम पाता है।

इसलिए पुण्य–पाप रहित मेरी आत्मा का स्वभाव है — ऐसा जानकर, अपने स्वभाव के आश्रय से धर्म की प्राप्ति करे तो जीव, संसार का अभाव करके मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बनें। छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थों में एकमात्र अपनी आत्मा ही परम आदरणीय है, उसी के आश्रय से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

कैलाशचन्द्र जैन

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धभगवन्त अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं; उसी प्रकार संसार में सर्व जीव जानना।

– **आचार्य कुन्दकुन्ददेव**

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सोनगढ़

दिनाँक 8-1-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे पूज्य भावी तीर्थङ्कर श्री! पूज्यश्री!

समयसारादि शास्त्र पहिले भी थे लेकिन आपने जो भव्य जीवों पर उपकार किया है, वह अमूल्य है। पात्र जीव, वर्तमान में अपनी अनादि की एक-एक समय की मूर्खता को दूर कर, अपने आप का अनुभव ले रहे हैं, वह आपकी देन है — ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। 'उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय, भेदज्ञान प्रमाण विधि बिरला बूझे कौय'।

जिस जीव का वर्तमान में उपादान जागा, उसमें आप ही निमित्तरूप हैं। निमित्त-नैमित्तिक को तो अज्ञानी कर्ता-कर्म मानकर, अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। उपादान (उस समय की योग्यता) का निमित्त के साथ अत्यन्ताभाव है; दोनों का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक है। निमित्त, उपादान का, दोनों का समय एक है, फिर एक-दूसरे से करने-कराने का विकल्प, निगोद का कारण है। शेर का उपादान जागा, तब क्या निमित्त मुनियों को बुलाना पड़ा, तथा हे दर्शनमोहनीय कर्म! तुम उपशमादि हो जाओ— ऐसा किसी को बुलाना या खोजना पड़ेगा? बिल्कुल नहीं। एकमात्र तू अव्यक्त, अरूप, अरस, अगन्ध, अस्पर्श, अशब्द, असंस्थान, अलिङ्गग्रहण - चेतनावाला आदि अनेक नामों से कहना जानेवाला पारिणामिक ज्ञायकभाव अनादि-अनन्त अहेतुक है; उसका आश्रय ले तो तू मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाम बन जावेगा।

देखो! छोटी द्रव्यसंग्रह गाथा 5; भावपाहुड़, गाथा 64; नियमसार, गाथा 46; प्रवचनसार, गाथा 172; पञ्चास्तिकाय गाथा 127, तथा धवल, तीसरे भाग पृष्ठ 2 पर अनादि से भगवान बनने की तीर्थङ्करादि घोषणा करते आये हैं, वह यह है कि :—

अरसमरुवम गंधं अव्वत्तं चेदणा गुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥49॥ *श्रीसमयसार*

आचार्यादि भगवान तो अपने को परमपरिणामिक भावरूप जानते हैं,

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

श्रद्धान करते हैं, लीनता करते हैं लेकिन पञ्चम काल में श्रेणी का पुरुषार्थ उपड़ता नहीं है, एक मात्र अपनी कमजोरी से। तब उनको लोभी पात्र जीव के प्रश्न करने पर भगवान आत्मा कैसा है ? जिसके जानने से सुख शान्ति प्राप्त हो।

अपनी कमजोरी से छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए भावलिङ्गी सन्त जो कि स्वयं जब छठवें गुणस्थान में ही तीन चौकड़ी के अभावरूप शुद्धपरिणति निरन्तर चालू है, कहते हैं कि अप्रमत्तदशा भी जीव नहीं है, प्रमत्तदशा भी जीव नहीं है। देखो ! भगवान की दृष्टि कहाँ है ? एकमात्र ज्ञायकभाव जो है, वह मैं हूँ। ज्ञायकभाव यह मैं — ऐसा विकल्प भी आत्मा का खून करनेवाला है। ऐसे भावलिङ्गी मुनि को अपने में स्थिरता न होने पर ऐसा ही विकल्प आता है, उसे हलाहल जहर मानते हैं। शब्द उच्चारण तो भाषावर्गणा का ही है, उससे आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है परन्तु अस्थिरता के विकल्प का, वाणी का सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर — भाई ! आत्मा तो चेतनागुण, अर्थात् अभेद आत्मा के द्वारा सदा प्रकाशमान है - वह आत्मा है, उसे तू जान !

अस्पर्शादि कहते ही अभेद त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव ही जानना चाहिए। देखो ! वर्तमान में पूज्यश्री गुरुदेव का तथा अनादि से तीर्थङ्करादि आचार्यों का-आत्मा, पुद्गल से, पुद्गल के गुणों से, स्पर्शनादि द्रव्येन्द्रियों से, भावेन्द्रियों से तो अनुभव में आ ही नहीं सकता; इसलिए तू इनसे दृष्टि हटा और अभेद ज्ञायक अव्यक्त पर दृष्टि डाल। — ऐसा कहना है।

आत्मा तो अखण्ड, सर्व को जाननेवाला एकरूप ज्ञानस्वरूप है; वह केवल रस, गन्ध को ही जाने— ऐसा नहीं है; रसादि को जानता हुआ भी, उस रूप नहीं होता है। शरीरादि, कर्मादि सब ज्ञेय हैं, तू ज्ञायक है। वास्तव में तो ज्ञेय-ज्ञायक कोई पृथक्-पृथक् नहीं हैं; आत्मा स्वयं ज्ञायक, स्वयं ही ज्ञेय है लेकिन आत्मा के ज्ञान की अवस्था का इस प्रकार का परिणमन होता है, वह सबको जानती हुई प्रगट होती है। अपने को एकरूप तन्मय होकर जानती है; पर को तन्मय होकर नहीं जानती; इसलिए आत्मा का स्वभाव -स्वपरप्रकाशक है।

कषायचक्र, अर्थात् ? भावलिङ्गी मुनि कहते हैं — भाई ! अपना अनुभव होने पर जो अस्थिरता सम्बन्धी कषाय-भावकभाव है, वह भी आत्मा नहीं है, तब अज्ञानी के शुभभाव को की तो बात ही नहीं है । जबकि ज्ञानी को जो शुभभाव अस्थिरता के कारण आ जाता है, वह भी दु:ख का कारण है। शुभभाव, आत्मा को समझने में मददगार हो, यह बात तो मिथ्यादृष्टि-निगोद में जानेवालों की है; इसलिए तू अपने अव्यक्त स्वभाव पर दृष्टि डाल तो तेरा कल्याण होगा।

यह अज्ञानी प्राणी, अमुक मर गये, अमुक मृत्यु के सन्मुख हैं और अमुक निश्चितरूप से मरेंगे ही - इस प्रकार सदा दूसरों के विषय में गिनती करता रहता है परन्तु शरीर, धन, स्त्री आदि वैभव में महामोह से ग्रसित मूर्ख मनुष्य, अपने समीप आयी हुई मृत्यु को देखता भी नहीं है।

- आचार्य अमितगति

आचार्य कहते हैं —अव्यक्तरूप जो ज्ञायकभाव है, उसमें शुद्धपर्याय अन्तर्भूत है; इसलिए वह भी आत्मा नहीं; आत्मा तो अनादि-अनन्त अभेद पिण्ड चेतन है, उसे तू जान तो तेरा कल्याण होगा। भगवान कहते हैं — क्षणिकपर्याय जितना मात्र भी आत्मा नहीं; आत्मा तो अनादि-अनन्त एकरूप अव्यक्त है, उसे तू जान! आत्मा तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव और परिपूर्ण शुद्धपर्याय, दोनों का प्रदेशभेद ना होते हुए वह आत्मा, मात्र शुद्धपर्याय को नहीं जानता है; इसलिए आत्मा अव्यक्त है, अर्थात् दोनों को जानता है। — ऐसा जानकर अव्यक्तस्वरूप तू स्वयं है, उसे तू जान!

अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव और शुद्धपर्याय, प्रत्यक्ष ज्ञानी के अनुभव में आती है, चाहे वह चौथे गुणस्थानवर्ती मेंढ़क हो, चाहे नरक का नारकी हो, देव हो; तथापि शुद्धपर्याय के प्रति उदासीनरूप से प्रकाशमान है; इसलिए आत्मा अव्यक्त है।

भाई! कहने का मतलब यह है कि अपनी आत्मा के अनुभव हुए बिना, जिनेन्द्र भगवान की एक बात भी समझ में नहीं आ सकती है। अनुभव हुए बिना 11 अङ्ग 9 पूर्व का पाठी भी विधर्मी / मिथ्यादृष्टि है; इसलिए तू अपने ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्मा का आश्रय लेकर, जिस तरह से भी हो एक बार अनुभव कर ले तो फिर क्या होता है ? वह तमाम जिनशासन का स्वामी हो जाता है। जिनशासन उससे बाहर नहीं है। यह अनुभव, अनुमानादि का विषय नहीं है, स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

पात्र जीव को, वर्तमान में निमित्तरूप श्री कानजीस्वामीजी के प्रति, जब तक अपने को परिपूर्णता नहीं होती है, आदर का विकल्प आता है, वह उसे हानिकारक / आत्मा का नाश करनेवाला मानता है; उसका अभाव करके अपने में लीन हो जाता है, तब उसे विकल्प को गुरुदेव का आदर कहने में आता है।

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावें विश्राम।
रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव ताकौ नाम॥

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

॥ श्री ॥

दिनाँक 10-1-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - पूज्य श्री गुरुदेव! समयसारजी में 50 से 55 गाथा तक का क्या रहस्य है ? क्यों शालवता, क्यों आचार्य भगवान को विकल्प आया, इसका रहस्य समझाओ ?

उत्तर - (1) शास्त्र की रचना आहारवर्गणा के स्कन्धों का कार्य है; आत्मा से सम्बन्ध नहीं है।

(2) 'मुनि का वचन' जो कहने में आता है, वह भाषावर्गणा का कार्य है; उससे आत्मा का सम्बन्ध नहीं है।

(3) जो भाविलङ्गी मुनि को विकल्प आया, उसे वे हानिकारक/ज्ञेय जानते हैं, उस भाव से आत्मा का हनन होता है लेकिन जब भावलिङ्गी मुनि, सातवें गुणस्थान से छठवें गुणस्थान में आते हैं तो तीन चौकड़ी के अभावरूप शुद्धि के साथ इसी प्रकार का शुभविकल्प होता है। उस विकल्प का, शब्द का, शास्त्र की रचना का — ऐसा ही सहज स्वतन्त्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

मुनि को अपना आत्मा का तथा सभी आत्माओं का भेदविज्ञान वर्तता है, तब अपने में ना रहने से आत्मा कैसा है ? ऐसा विकल्प आने पर, 29 बोलों से आत्मा का सम्बन्ध नहीं है; उसमें द्रव्यकर्म, नोकर्म तो पुद्गल हैं ही, इनसे तो सम्बन्ध है ही नहीं; इनके निमित्त से होनेवाला भाव भी, पुद्गल के सम्बन्ध से होनेवाला विकारी शुभाशुभभाव, आत्मा नहीं है। तथा शुद्धभाव, अर्थात् शुभाशुभभाव से रहित शुद्धदशा भी आत्मा नहीं है क्योंकि जब तक दृष्टि, शुद्धपर्याय पर हो तो अपने में भी निर्विकल्पता नहीं होगी। तथा अज्ञानी पूछनेवाला है तो उससे कहते है कि भाई! शुद्धभाव — केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकचारित्र भी आत्मा नहीं है। अज्ञानी को शुद्धभाव का पता नहीं है तो उससे कहते हैं दृष्टि एकमात्र अपने स्वभाव पर कर तो तेरा कल्याण होगा।

(1) देखो! वेदान्त की तरह 'कुछ नहीं' — ऐसी बात नहीं है परन्तु वर्णादि नोकर्म, द्रव्यकर्म हैं, अनन्त आत्मा हैं, पुद्गलादि हैं, आठ कर्म हैं, उदय,

शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है - ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर अर्थात् परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर, शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।

- मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

उपशम, क्षयादि हैं; इनसे तेरा सम्बन्ध नहीं है। शुभाशुभभाव हैं, शुक्ललेश्या है लेकिन इससे तेरा भला नहीं है और शुद्धभाव हैं लेकिन इस पर दृष्टि देने से भी मेरा कल्याण नहीं होगा; एकमात्र अपने स्वभाव पर दृष्टि दे तो तेरा कल्याण होगा।

प्रश्न – केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकपर्याय को, आत्मा नहीं — ऐसा क्यों कहा?

उत्तर – जब चाहे चौथे गुणस्थानवर्ती हो, पाँचवाँ हो, छठावाला हो, जब तक पर्याय पर दृष्टि रहेगी तो पूर्ण कल्याण नहीं होगा। चौथे गुणस्थानवाले की दृष्टि, एकमात्र त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर ही होती है, पर्याय पर नहीं; इसलिए अभेद आत्मा का अनुभव करने के लिए ऐसा कहा है। ज्ञानी तो जानता है — अभेद ज्ञायक पिण्ड मैं हूँ, क्योंकि उसे तो अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव में ही एकमात्र रहने की भावना है। उसमें लीन होता है तो केवलज्ञानादि स्वयं प्रगट हो जाते हैं। स्वभाव के आश्रय से ही शुद्धपर्याय प्रगट होती है, करनी नहीं पड़ती है।

स्वभाव के आश्रय का फल शुद्धपर्याय है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को अपना कल्याण करने के लिए एकमात्र अनादि-अनन्त, ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि देनी चाहिए, तभी कल्याण सम्भव है; अन्यथा कभी भी नहीं।

तू स्थाय निज को, मोक्ष पथ में, ध्याय अनुभव तू उसे।
उसमें ही नित्य बिहार कर, न बिहार कर, परद्रव्य में॥412॥ श्रीसमयसार

(1) कल्याण करना हो तो — अन्य मित्र जो पदार्थ है, उससे तो तेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

(2) शरीर तथा द्रव्यकर्म, पुद्गल के है, एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध है, इससे भी दृष्टि उठा।

(3) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धदशा है, इस पर दृष्टि देने से कल्याण नहीं होगा, उठा दृष्टि इससे भी।

(4) एकमात्र अनादि भगवान मोक्षस्वरूप तू है, उस पर दृष्टि दे तो सुख-शान्ति प्राप्त होगी। सुख तेरे ही पास है। अपने आत्मा को न समझने से ही दुःख है, इसको समझ ले तो दुःख का अभाव है। परवस्तु में 'मैं पने' का भाव संसार है; अपनी आत्मा में 'मैं पने' का एकत्व मोक्ष है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 18-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न — हे पूज्य गुरुदेव! अनुभव होने का और आस्रवों के दूर होने का एक ही समय कैसे है ? जरा स्पष्ट तौर से समझाओ ?

उत्तर — जैसे, एक व्यभिचारी स्त्री ने एक आदमी से उसके मकान में, जहाँ गाय भैंसें बँधती है, रात्रि के 12 बजे मिलने का वायदा किया तो वह आदमी व्यभिचार के मद में पागल हुआ रात्रि के 12 बजे वहाँ गया। वहाँ पर उसने कहा आ गई हो ? तब वह बोली — बेटा मैं तेरी माँ हूँ। गायों को सानी नहीं थी, वही करने आई हूँ। देखो! इतना सुनते ही उसका विकार का भाव नष्ट हो गया; मातृत्त्वभाव प्रगट हो गया; उसी प्रकार जब जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेता है, तभी आस्रवभाव का अभाव और आत्मा का अनुभव हो जाता है।

जैसे, घर में बेटा, माँ-बाप तीन प्राणी रहते थे। लड़के की माँ मर गयी तो घर में बेटा-बाप रह गये। बेटे का विवाह हुआ, उधर बाप ने भी दूसरा विवाह कर लिया। एक दिन लड़के की बहू कुँए से पानी भरने गयी, उधर लड़के की दूसरी माँ, बहू के कपड़े पहन कर पलंग पर सो गयी। इतने में लड़के ने समझा कि मेरी बहू है। उसे झझोरा तो वह बोली — बेटा! मैं तो माँ हूँ। देखो! उसी समय विकार का अभाव हो गया, और मातापने का भाव आ गया; इसी प्रकार आत्मा का आश्रय लेते ही विकार का अभाव और धर्म की प्राप्ति का एक ही समय है। यही बात समयसार 74 की गाथा में — आस्रव घातक है, अध्रुव है, अनित्य है, अशरण है, सदा आकुलतारूप है, भविष्य में भी आकुलतारूप है — ऐसा जाना, तभी आत्मा बन्धरहित, ध्रुव, नित्य, शरणरूप, सुखरूप, आगामी भी सुखरूप अनुभव में आता है क्योंकि आस्रवों के ओर आत्मा के भेदविज्ञान का एक ही समय है। यही बात 34 वीं गाथा में आ गयी है।

अपने भगवान का आश्रय लेकर, धर्म प्रगट करना प्रत्येक जीव का कर्तव्य है। शुभाशुभभाव से तीन काल — तीन लोक में धर्म नहीं हो सकता है; एक मात्र अपने भगवान का ही आश्रय लेने से धर्म होता है।

कैलाशचन्द्र जैन

'शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य, ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं' — ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

- मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय - दिनाँक 7-4-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे पूज्य गुरुदेव!

आप वर्तमान में मेरे लिए तीर्थङ्करों के भी सरताज साबित हुए हैं। आपने, जो अनादि से तीर्थङ्करादि कहते आये हैं, वह बात वर्तमान में पात्र जीवों को बताकर, तीर्थङ्कर भगवान का विरह भुला दिया है। वर्तमान पञ्चम काल को चौथा काल बना दिया है। ऐसे हे कहान स्वामी! मैं किस विधि तुम्हारा गुणगान करूँ।

मैं आपका गुणगान जब कर सकता हूँ, जबकि मैं अभी अपनी आत्मा से परिपूर्ण लीन हो जाऊँ, वह वर्तमान में अपनी मूर्खता के कारण नहीं हो पा रहा है।

प्रश्न – प्रवचनसार गाथा 232 से 244 तक का सार क्या है ?

उत्तर – जब तक अपनी आत्मा का भान, हो तब तक वह पशु है, चाहे वह द्रव्यलिङ्गी मुनि क्यों ना कहावे। यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है तो एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का ही आश्रय ले। यदि स्वप्न में भी पर का, राग का आश्रय दृष्टि में होगा तो कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होगी। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है, तब तक आगमज्ञानादि किसी का भी पता नहीं है। सम्यग्दर्शन हुए बिना, धर्म का शत्रु है। सम्यग्दर्शन होने पर ही मुनिपना होता है। वास्तव में चौथे गुणस्थान में सिद्ध से दृष्टि अपेक्षा भेद नहीं है।

सम्यग्दर्शन होने पर, पाँचवा गुणस्थान होने पर, तथा सातवें गुणस्थान होने के बाद, छठवाँ गुणस्थान होने पर भी, अट्ठाईस मूलगुणादि का राग होने पर मुनिपना नहीं है क्योंकि राग, मुनिपना नहीं है। आचार्य भगवान ने छठवें गुणस्थान में जो भूमिकानुसार राग आता है, उसका भी निषेध करके, परिपूर्णता होने के लिए आदेश दिया है। भूमिकानुसार जो कषायकण है, वह महान हानिकारक है। देखो! जब भूमिकानुसार 4-5-6 गुणस्थान में राग, मोक्ष का नाश करनेवाला है —ऐसा भगवान कहते हैं, तब मिथ्यादृष्टि के वालतपादि की तो बात ही नहीं है। मिथ्यादृष्टि, वालतप, अणुव्रतादि, महाव्रतादि, दया, दान, पूजा भक्ति से लाभ

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

हे आत्मन्! तू जिस प्रकार काम के बाणों से पीड़ित होकर, स्त्री के संयोग से प्राप्त होनेवाले सुख के विषय में अपने चित्त को करता है; उसी प्रकार यदि मुक्ति के कारणभूत जिनेन्द्र के द्वारा उपदिष्ट मत के विषय में उस चित्त को करता तो जन्म, जरा और मरण के दुःख से छूटकर किस-किस सुख को प्राप्त न होता? अर्थात् सब प्रकार के सुख को पा लेता – ऐसा उत्तम स्थिर बुद्धि से विचार करके उक्त जिनेन्द्र के मत में चित्त को स्थिर कर।

– आचार्य अमितगति

मानता है, वह वर्तमान में ही निगोद में हैं क्योंकि जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक बाहरी क्रिया मैं नहीं कर सकता हूँ — ऐसा दृष्टि में नहीं आता है। वह बाहरी क्रिया का तथा शुभभाव का कर्ता होने से मिथ्यात्वभाव की पुष्टि होती है; इसलिए मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी मुनि को शुक्ललेश्या होने पर भी, वह मिथ्यात्व के महान पाप होने से वह संसार का नेता है। सम्यग्दृष्टि, मोक्ष का मालिक है क्योंकि उसकी दृष्टि, एकमात्र स्वभाव पर रहती है। वह कभी भी राग को, पर को उपादेय नहीं मानता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। भूमिकानुसार होनेवाला राग भी अनर्थकारी है — ऐसा मोक्षमार्ग का सार है। त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की तथा मोक्ष की सिद्धि होती है।

सम्पूर्ण चारों अनुयोगों का सार 'तू अपने भगवान आत्मा का आश्रय कर' — एकमात्र यह ही है। हे पूज्य श्री! आज आप ना होते तो निमित्त अपेक्षा ऐसा कहने में आता है कि जैनधर्म का लोप हो गया होता। मैं आपको शत्-शत् वन्दन करता हूँ।

हे परम कृपालु गुरुदेव!

जो अनादि से मिथ्यादृष्टियों ने देव-गुरु-शास्त्र का आदर, सम्यग्दर्शन; अणव्रतादि-श्रावकपना; अट्ठाईस मूलगुणपालन मुनिपना माना है, वह आपश्री ने डंके की चोट से कहा है — यह मुनिपना आदि नहीं हैं, उसमें जो शुद्धि अंश है, वह ही सम्यग्दृष्टिपना, श्रावकपना, मुनिपना है; जो भूमिकानुसार राग है, वह अग्नि के समान दुःखदायक है।

जय गुरुदेव!

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

बुलन्दशहर

दिनाँक 29-4-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – पूज्य गुरुदेव! चारों अनुयोगों का सार क्या है?

उत्तर – एकमात्र अनादि-अनन्त ज्ञायकस्वभावी भगवान के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है; पर से, विकारी से, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय से नहीं; क्षायिकभाव पर भी दृष्टि रहे तो कल्याण नहीं होगा; इसलिए सहज कारणसमयसार ही का भगवानपना है।

प्रश्न – संसार क्या है?

उत्तर – अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का पता ना होना, संसार है; संसार अनादि से होता हुआ भी एक समयमात्र का मात्र अपने अपराध से ही है — ऐसा जानकर, स्वभाव का आश्रय ले तो संसार क्या है, मोक्ष क्या है, संवर निर्जरा क्या है? पता चलता है। अपने को जाने बिना, संसार न का पता है, न मोक्ष का ही। स्त्री, पुत्र, मकानादि तथा कर्मादि के कारण संसार नहीं है; मात्र एक समय की एकत्वबुद्धि ही संसार है।

प्रश्न – संसार कैसे समाप्त हो?

उत्तर – अपने स्वभाव का आश्रय ले तो संसार समाप्त होता है।

प्रश्न – पूरे नियमसार का तात्पर्य क्या है?

उत्तर – समयसार 50 से 55 तक 29 बोलों से आत्मा का सम्बन्ध मत मानो; एकमात्र त्रिकाली परमपारिणामिकभाव के आश्रय से ही धर्म होता है। चार भाव, हेय हैं;[1] एकमात्र परमपारिणामिकभाव ही आश्रय करने योग्य है, क्योंकि इसी के आश्रय से पर्याय में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की प्राप्ति होती है।

पाँच भावों का रहस्य समझानेवाले भावी तीर्थङ्कर के रूप में श्री कहान गुरु को बारम्बार नमस्कार।

आपका

कैलाशचन्द्र जैन

1. औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक — ये चार भाव पर्यायरूप होने से दृष्टि के विषय में नहीं आते-आश्रय करने योग्य नहीं है; इसलिए हेय हैं। एकमात्र परमपारिणामिक भावरूप शुद्धात्मा ही उपादेय है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

स्वभाव की बात सुनते ही सीधी ह्रदय पर चोट लग जाए; 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीर को चीरता हुआ ह्रदय में उतर जाए, रोम-रोम उल्लसित हो जाए — इतना ह्रदय में हो, और स्वभाव को प्राप्त किए बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े - यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।

- बहिनश्री चम्पाबेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 26-10-1969

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते,
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

मैं 16 दिन गुना रहा, वहाँ पर तथा 22 तारीख की शाम आरोन आया हूँ, यहाँ पर, प्रेम से बातें तो सुनते हैं लेकिन असल बात पर किसी का भी विचार नहीं जाता है।

देखों! वर्तमान में जैसे सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि हो रही है और भूतकाल में तीर्थङ्करों की थी और भविष्य में तीर्थङ्करों की होगी, वही बात आज आपने सोनगढ़ से भावी तीर्थङ्कर के रूप में रखी, परन्तु यह बात तो कोई विरले को ही ध्यान में आवेगी।

मुझे वर्तमान अपने में स्थिरता नहीं होती है और अपने में ही रहने का विकल्प आता है। यह विकल्प तथा लोगों को अपने स्वरूप की अभी प्राप्ति हो - यह भाव भी दुःखदाई सा प्रतीत होता है। तब अशुभ की बता ही कहाँ है! जहाँ शुभभाव ही दुःखरूप ज्ञान में आता है। शुद्धभाव की बात अपना अनुभव हुए बिना ख्याल में नहीं आ सकती। अपना अनुभव हुए बिना, धर्म की प्राप्ति, वृद्धि, स्थिरता नहीं हो सकती हैं; इसलिए प्रथम प्रत्येक पात्र जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त करना प्रथम कर्तव्य है। वर्तमान में इतनी-इतनी स्पष्टता होने पर भी, जीवों के ध्यान में नहीं आती है तो उनकी होनहार खराब है।

हे परम कृपालु गुरुदेव!

यह अपूर्व आत्मा की प्राप्ति, ऐसा कहने में आता है, आप से हुई। जिसकी प्राप्ति से संसार का अभाव, धर्म की प्राप्ति, निश्चय से पूर्णता होती ही है। अपना अनुभव होते ही सिद्धदशा, पञ्च परमेष्ठी में फर्क नहीं रहता है, आनन्द की बात एक ही है — ऐसा अपूर्व अपना अनुभव, पात्र जीव अभी-अभी करें — ऐसा भाव आ जाता है लेकिन जिसके ध्यान में मैं बाहरी क्रिया करूँ, शुभभाव करूँ, इससे मुझे लाभ है, उसे तो कभी धर्म की प्राप्ति होगी ही नहीं, क्योंकि धर्म की प्राप्ति एकमात्र अपने अनादि-अनन्त स्वभाव के आश्रय से होती है।

वर्तमान में सम्यग्दृष्टि जीव, आपके सिवाय मुझे दृष्टि में नहीं आता है और जीव होंगे – मैं उनको जानने में नहीं जान पाया। जब जीव को अपना अनुभव होता है, तब ही उसे सच्चा देव–गुरु–शास्त्र कौन है ? पञ्च परमेष्ठी क्या है ? पता चलता है। अपना अनुभव हुए बिना, द्रव्यलिङ्गी मुनि क्यों ना हो, वह जैन नहीं है क्योंकि जैन की शुरुआत सम्यग्दर्शन के बिना कैसे हो सकती है ?

अहो! आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है; पर के, विकारीभावों के आश्रय से कदापि नहीं।

पाँचों इन्द्रियों में लोग आननद मानते हैं; कितना आश्चर्य है! विषयों मं सुख–दु:ख नहीं है, मात्र अपनी कल्पना से ही पागल हो रहे हैं।

हे परम कृपालु गुरुदेव!

मैं तो वर्तमान में सिद्ध के समान तमाम, लोकालोक को जानता हूँ; मात्र प्रत्यक्ष परोक्ष का भेद है।

वर्तमान में इतनी स्पष्टता होने पर भी, यदि अपनी ओर सन्मुख नहीं होता तो कहना होगा अभागा है।

हे संसार के प्राणियों! तुम आज ही अपना आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करो; नहीं तो न जाने कहाँ जाकर पड़ोगें! पता भी न चलेगा! मोक्षमार्ग प्रकाशक, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, प्रश्नोत्तर माला तीनों भाग तथा पूज्य श्री का प्रवचन वर्तमान में अपूर्व है। वैसे तो चारों आगमों में मात्र वीतरागता ही धर्म हैं लेकिन इनमें कम पढ़े–लिखे को भी ध्यान में आता है; इसलिए पात्र जीवों को ज्ञानियों का समागम करके, अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए।

हे परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

जैनधर्म में उत्पन्न होने पर, वर्तमान त्यागियों और पण्डित कहलानेवालों ने तो महान अनर्थ किया, उसका क्या फल होगा ? अनन्त संसार ही होगा। वर्तमान में अपने को अनुभव होने पर, अपने में ही रहकर अपना आनन्द ले; पर को समझाने आदि का विकल्प हानिकारक है लेकिन सम्यग्दृष्टि को ऐसा विकल्प आता है, वह उसका भी ज्ञाता है। अहो! सम्यग्दृष्टि ही वर्तमान में जैनशासन है; इसलिए अपने आपको अनुभव करके जैनशासन कायम रखना, पात्र जीव का लक्षण है। मन्दिर, शास्त्र, वह जैनशासन नहीं है; अनुभव होने पर जैनशासन है।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 9-11-1969

निज दर्शन वस श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित् मान।
हे योगी शिवहेतु ए, मोक्ष हेतु ए मान॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

आज भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव है। भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव जैसा उन्होंने करके निर्वाण प्राप्त करे, वह उत्तम निर्वाणोत्सव है। कम से कम अपने परिपूर्ण अनादि-अनन्त स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, मिथ्यात्व का अभाव करे, और जिसको मिथ्यात्व का अभाव हुआ है, वह अपने स्वभाव की ओर एकाग्रता करके श्रावकपना, मुनिपना प्रगट करे। मिथ्यादृष्टि, भगवान का निर्वाणोत्सव नहीं मना सकता है; वह तो राग की पुष्टि करता है। वर्तमान में द्रव्यकर्म, नोकर्म से तो ज्ञानी-अज्ञानी का भी सम्बन्ध नहीं है; ज्ञानी का शुद्धपर्याय से, अज्ञानी का शुभाशुभविकार से सम्बन्ध है — ऐसा जानकर, स्वभाव का आश्रय ले तो शान्ति हो।

कैलाशचन्द्र जैन

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।

- बहिनश्री चम्पाबेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय – रात्रि 11 बजे लिखा **दिनाँक 27-11-1969**

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

परम कृपालु पूज्य गुरुदेव!

आज वर्ल्ड में अज्ञानी, पाँचों इन्द्रियों में ऐसा आसक्त हो रहा है, जैसे, कुत्ता हड्डी चाबने में आसक्त होता है। जैसे, हड्डी में खून नहीं हैं, सुख-दुःख नहीं है, मात्र कुत्ता अपनी मान्यता से ही पागल हो रहा है; उसी प्रकार अज्ञानी, मात्र अपनी मान्यता से ही पागल हो रहा है। वह उल्टी मान्यता, मात्र एक समय की है; स्वभाव अनादि अनन्त है, इसके आश्रय के बिना, संसार का अभाव नहीं हो सकता है।

अज्ञानी को बाहरी तत्त्वों का विश्वास बैठता है, उसी में तमाम जीवन खो देता है और भगवान कहते हैं तू स्वयं भगवान है, उसकी ओर तो विश्वास नहीं करता।

चारों अनुयोगों में मात्र वीतरागता ही मोक्षमार्ग है; राग मोक्षमार्ग नहीं, बन्धमार्ग है — ऐसा आता है और ऐसा ही है। जिसको अपना कल्याण करना हो — ऐसा ही मानकर, मात्र अपने स्वभाव का आश्रय ले तो शान्ति प्राप्त हो। वर्तमान कितना गजब है! दिगम्बर धर्म प्राप्त किया, सब बातें पूज्य श्री के निमित्त से स्पष्ट आई हैं लेकिन वर्तमान में कुछ अज्ञानियों (जिसमें वर्तमान के पण्डित कहलानेवाले और वर्तमान के त्यागी भी आते हैं) ने अपनी मनमानी चलाने के लिए, भोली-जनता को पागल बनाया है। वास्तव में पागल तो वह स्वयं से ही बनते हैं, पर से नहीं तथा बोलने में ऐसा आता है। निमित्त-नैमित्तिक की स्वतन्त्रता ध्यान में आ जावे तो कल्याण का अवसर है।

जो जीव अपना भला करना चाहता है, उसे पूज्य कानजीस्वामी के चरणों में जाकर उपादान क्या है? निमित्त क्या है? निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है? हेय-उपादेय-ज्ञेय क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतन्त्रता कैसे है? छह द्रव्य, सात तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिए। इन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

सब बातों का सही अध्ययन करानेवाले निमित्तरूप पूज्य गुरुदेव ही हैं, और उनके शिष्य रामजीभाई तथा खेमचन्द्रजी भाई हैं। इनके सानिध्य में अभ्यास करो और फिर अपनी आत्मा का आश्रय लो तो अवश्य कल्याण होगा।

(1) संसार में जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं। एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

(2) एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं और पर्यायें हैं।

(3) एक द्रव्य के अनन्त गुण भी, एक गुण दूसरे रूप नहीं होता है।

(4) एक-एक गुण की एक-एक समय में एक-एक पर्याय होती है। उस पर्याय का, उसी गुण की अगली-पिछली पर्याय से भी सम्बन्ध ही है, तब दूसरे गुण की पर्याय से सम्बन्ध कैसे होगा ? नहीं होगा। ऐसी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत् की स्वतन्त्रता का सोपान चारों अनुयोग है।

(5) चिद्विलास का प्राक्कथन, पाना 7 से 24 तक गुरुगम से अभ्यास करो, अपूर्व है। मोक्षमार्गप्रकाशक पाना 248 से लेकर 257 तक गुरुगम से अभ्यास करना श्रेयकर है। प्रश्नोत्तरमाला तीनों भाग दिन-रात स्वाध्याय करना, उत्तम है।

वर्तमान में पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनरूप जो पुस्तकें छपी हैं, वह पात्र जीव के लिए मोक्षमार्ग की कुंजी हैं।

याद रखने योग्य बातें :-

(1) मोक्षमार्ग एक ही है, उसका कथन अनेक प्रकार है। कोई दो प्रकार का मोक्षमार्ग कहता है, झूठा है; मात्र वीतरागता ही तीन काल तीन लोक में मोक्षमार्ग है। दया, दान, पूजा, यात्रा कभी भी मोक्षमार्ग नहीं है; बन्धमार्ग है। शुभभाव कभी भी धर्म का कारण नहीं हो सकता है। इसके लिए समयसार कलश टीका, राजमल कृत कलश 100 से 112 तक अवश्य देखें।

(2) निश्चय-व्यवहार को भलीभाँति जानों। शुद्धनिश्चय ही के आश्रय से शुद्धदशा प्रगटे, वह मोक्षमार्ग है और शुद्धनिश्चय के आश्रय से पूर्ण दशा प्रगटे, वह मोक्ष है।

(3) बाहरी क्रिया, शरीर की क्रिया से, आठ कर्मों की क्रिया से बन्ध-मोक्षमार्ग का सम्बन्ध नहीं है; मात्र अपने शुभाशुभ विकारीभावों से संसार है, शुद्धभावों से मोक्ष है और मोक्षमार्ग है। जो जीव, बाहरी क्रियाओं से, शुभभाव से

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा। शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। यदि मूलस्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें, उस समय शान्ति-समाधान रहेगा, ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।

- बहिनश्री चम्पाबेन

धर्म मानते हैं, उन्हें कभी भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी; उल्टे अधर्म/ निगोद की प्राप्ति होगी।

(4) वर्तमान में पाँचवा गुणस्थान, मुनिपना दिखाई नहीं देता है, सम्यग्दृष्टि भी कहीं-कहीं दिखता है। सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि का बाहरी क्रियाओं से सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि, स्वभाव पर रहती है; इसलिए दृष्टि की अपेक्षा अबन्ध है; ज्ञान की अपेक्षा सब ज्ञान का ज्ञेय है; चारित्र अपेक्षा अल्प बन्ध है; उसका अभाव करके नियम से मोक्ष में चला जावेगा।

पूज्य गुरुदेव निमित्तरूप आपकी कृपा से मैं तो मुक्तस्वरूप ही हूँ। मुक्तस्वरूप की बात सुननेवाले पात्र जीव भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, आश्चर्य है। सब जीवों में भगवानपने की शक्ति है। यदि उस शक्तिवान का आश्रय ले तो शान्ति आवे।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अशोकनगर

समय - प्रातः 4 बजे **दिनाँक 12-1-1970**

मंगलमय मंगल करण, वीतराग विज्ञान।
नमो ताहि जातैं भये, अरहन्तादि महान॥
निज दर्शन वश श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित मान।
हे योगी शिवहेतु ए - मोक्ष हेतु ए मान॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

पूज्य गुरुदेव के चरणों में,

अगणित नमस्कार!

हे पूज्य! गुरुदेव अनादि से जो तीर्थङ्कर बताते आये हैं, वहीं आप सोनगढ़ से दिव्यध्वनि के रूप में भव्य जीवों को परोस रहे हैं लेकिन आपकी वाणी को झेलनेवाला सम्यग्दृष्टि ही हो सकता है; मिथ्यादृष्टि तो सुनकर कुछ का कुछ लगायेगा।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

वर्तमान में पवित्रता के साथ पुण्य का योग बनने से जो आज भव्य जीवों के हृदय में धर्म की प्राप्ति हुई, वह भव्य जीव चन्द ही हैं। वे आपको भावि तीर्थङ्कर के रूप में नमस्कार करते हैं। पात्रों को ऐसा राग आता है। पात्र जानता है कि ऐसा राग भी दुःखदाई है।

प्रश्न – सर्वज्ञ भगवान ने शुद्धभाव से भी धर्म कहा है, शुभभाव से भी, और शरीर की क्रिया से भी क्योंकि भगवान का मार्ग प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप है, — ऐसा कहते हैं ?

उत्तर – भाई ! धर्म तो मात्र वीतरागता ही है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही है, इसके अलावा और नहीं, लेकिन जिसको वीतरागता की, अर्थात् मोक्षमार्ग की प्राप्ति हुई है; मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई — ऐसे साधक जीव की शुद्धि, शब्दों में नहीं कही जा सकती है, तब व्यवहारनय से कहीं-कहीं – चरणानुयोग में शुद्धता का ज्ञान कराने के हेतु, शुभभाव को परम्परा धर्म का कारण कहा है तथा कहीं-कहीं निमित्त का निमित्त होने के हेतु शरीर आदि क्रिया को भी धर्म का कारण कहा है। उसका अर्थ 'ऐसा नहीं है; निमित्त की अपेक्षा कथन किया हैं।' यदि शुभभाव को, बाहरी क्रिया को धर्म का कार्य यथार्थ मान ले उस जीव को कभी भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी, बल्कि परम्परा निगोद का पात्र होगा। इसलिए एकमात्र वीतरागता ही मोक्षमार्ग और मोक्ष है; अन्य साधन निमित्तादि की अपेक्षा कहे हैं — ऐसा जानना।

प्रश्न – कार्य उपादान से ही होता है परन्तु निमित्त ना हो तो नहीं होता है। भगवान ने दोनों कारण कहे हैं, दोनों सच्चे कारण है ? ऐसा प्रश्न है।

उत्तर – कार्य मात्र उस समय की क्षणिक योग्यता से ही होता है; उसमें निमित्त का स्वप्न में भी हस्तक्षेप नहीं है। जैसे, एक रुपया के सौ पैसा और एक पैसा के करोड़ हिस्से करो और एक करोड़ के एक नम्बर का भी उपादान में मदद असर मानें, वह जिनमत से बाहर है, उसे धर्म की प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु जब उस समय की योग्यता से कार्य होता हैं; नियम से निमित्त होता ही है, उसमें उसकी आवश्यकता या अनावश्यकता का प्रश्न है ही नहीं। क्योंकि जहाँ उपादान होता हैं, वहाँ निमित्त होता ही है — ऐसी भेदज्ञान प्रमाण की विधि है, उसको ज्ञानी ही जानते हैं; इसलिए हमेशा याद रखो — कार्य उपादान से उस समय की योग्यता से ही होता हैं; निमित्त होता है परन्तु निमित्त, उपादान में कुछ करता नहीं है। क्या

ज्ञानी के अभिप्राय में, राग है वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी, विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं-न्यारे हैं।

– बहिनश्री चम्पाबेन

भगवान कहीं निमित्त से कार्य होना बतलाये, कहीं उपादान से, कहीं दोनों से? भाई! ऐसा है ही नहीं। मात्र उपादान की योग्यता से ही कार्य होता है — ऐसा मानकर अपना कल्याण कर।

प्रश्न – शुभभाव से स्वर्ग–मोक्ष दोनों कहते हैं – यह प्रश्न है?

उत्तर – शुभभाव, मिथ्यादृष्टि का तो अनर्थ–परम्परा निगोद का कारण हैं क्योंकि उसके साथ मिथ्यात्व का महान पाप है, परन्तु भाई! भगवान ने ज्ञानी के शुभभाव को, अर्थात् ज्ञानी के देव–गुरु–शास्त्र के राग को, श्रावकदशा में 12 अणुव्रतादि के राग को तथा तीन चौकड़ी अभावरूप शुद्धदशा के साथ 28मूलगुण पालन आदि का भाव तथा श्रेणी में होते हुए 8–9–10 गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक राग भी बन्ध का कारण, दु:ख का कारण बतलाया है। ज्ञानी अपनी–अपनी भूमिकानुसार राग को हलाहल जहर मानते हैं। वह उनके ज्ञान का ज्ञेय है। वह अपने स्वभाव के आश्रय से निरन्तर स्थिरता बढ़ाते हुए, राग को दूर करते हुए क्रमश: मोक्षरूपी लक्ष्मी के नाथ बन जाते हैं। इसलिए शुभभाव ज्ञानी का हो, अज्ञानी का हो, वह तो बन्ध का ही कारण, दु:ख का कारण जानना; मोक्ष का कारण कभी भी नहीं। शुभभाव पर्याय में होना, वह मिथ्यात्व नहीं है क्योंकि शुभभाव, ज्ञानी की पर्याय में होता है, वह उसे ज्ञेय जानता है, परन्तु दया, दान, पूजादि के विकल्पों से मोक्ष होगा — यह भाव, अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न – हम दया–दानादि करते हैं, हमें शान्ति प्राप्त क्यों नहीं होती है?

उत्तर – शान्ति तो आत्मा के स्वभाव से भरी है, उसकी दृष्टि करे तो प्राप्त हो। दया, दान, पूजादि तो अशान्ति है, अधर्म है; उससे शान्ति चाहना, लहसुन खाते हुए कस्तूरी की गन्ध चाहने के समान है।

इसलिए भगवान सर्वज्ञदेव कहते हैं — तू शान्तिस्वरूप, मोक्षस्वरूप भगवान है, उसका आश्रय ले तो तू स्वयं शान्तिस्वरूप मोक्षस्वरूप है — ऐसा तुझे पता चलें।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं, जब तक सम्यग्दर्शन न हों, उसके लिए चारित पालो, भगवान की पूजा करो, दान दो, इससे हो जावेगा?

उत्तर – भाई! सम्यग्दर्शन के लिए तो मात्र आत्मा का आश्रय ही है, उसके लिए पात्र जीव को हेय–उपादेय का ज्ञान, छह द्रव्य, सात तत्त्वों का ज्ञान, त्यागने योग्य मिथ्यात्वादि और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप पहिचानना;

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

भीतर आत्मदेव विराजमान है, उसकी सँभाल कर। अब अन्तर में जा, और तृप्त हो। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा को देख, उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर, उस आनन्दरूप सरोवर में केलि कर — उसमें रमण कर।

– **बहिनश्री चम्पाबेन**

निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, छह कारकों ज्ञान, चार अभावों का ज्ञान, छह सामान्य गुणों का ज्ञान करना चाहिए। ऐसा करके अपने आत्मा का आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन होता है। यदि इसके बदले पूजा, यात्रा, चारित्र पालो, वह संसार की तीव्रबुद्धि का कारण है। सम्यग्दर्शन के बिना, व्रतादि होते ही नहीं, चारित्र भी नहीं होता है। सम्यग्दर्शन के बिना 11 अङ्ग 9 पूर्व का ज्ञान, मिथ्याज्ञान शास्त्रीय अभिनिवेश परम्परा निगोद का कारण है। यम-निमय संयम पालता हुआ मिथ्यादृष्टि असंयमी संसार का नेता है। इसलिए जीव का कर्तव्य, तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है।

प्रश्न – सम्यदर्ग्शन के बिना क्या हमारे व्रतादि सच्चे नहीं है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन के बिना व्रतादि नाम भी नहीं पाता है, तब सच्चे का प्रश्न आया कहाँ से। जो जीव, शुद्धपरिणति के बिना व्रतादि को मानते हैं, उससे मोक्षमार्ग मानते हैं वे परम्परा निगोद के कारण है। (पञ्चास्तिकाय, जयसेनाचार्य टीका 172 में देखो।)

प्रश्न – सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र मान ले तो क्या होगा ?

उत्तर – पीतल पास में रखकर, सोना माने या दूसरे की स्त्री को अपनी मान ले – तो क्या होगा ? वही दशा होगी, अर्थात् सिर पर जूते पड़ेंगे, पुलिस के हवाले होगा; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र और ज्ञान, मिथ्याचारित्र और मिथ्याज्ञान है; इसलिए ज्ञानी को ही मोह-क्षोभरहित चारित्र होता है।

प्रश्न – जैनधर्म में हिंसा क्या है, अहिंसा क्या है ?

उत्तर – बाहरी जड़ की क्रिया या शरीर की क्रिया से हिंसा-अहिंसा का सम्बन्ध नहीं है; मात्र शुभाशुभभाव प्रमत्तयोग हिंसा है और निःकषाय, अर्थात् कषायरहित शुद्धभाव अहिंसा है।

प्रश्न – यहाँ पर दया, दान, पूजा वाले को सरागसम्यग्दृष्टि कहते हैं — क्या यह ठीक है ?

उत्तर – बिल्कुल गलत है। भगवान जयसेनाचार्यजी ने पञ्चास्तिकाय, गाथा 150 तथा 151 की टीका में कहा है कि जब यह जीव, आगमभाषा से कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामस्वरूप स्वसंवेदन को प्राप्त करता है, तब प्रथम वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशम और क्षयोपशम द्वारा सरागसम्यग्दृष्टि होता है। इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही

सराग-सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। उसके बदले जो शुभभाव होने पर, शास्त्रादि का अभ्यास होने पर, दया, दान, पूजादि का विकल्प होने को मानते हैं, वे अनन्त संसारी हैं।

प्रश्न – सोनगढ़वाले आत्मा-आत्मा की बात करते हैं, मुनियों की बातें करते हैं; हमें तो सात व्यसन के त्यागने का उपदेश, पूजादि का उपदेश होना चाहिए?

उत्तर – भगवान की आज्ञा है — प्रथम मुनिदशा का उपदेश होना चाहिए, वह न पाल सके तो श्रावकपने का, वह भी न पाल सके तो कम से कम सम्यग्दृष्टि के बनने का उपदेश देना चाहिए। भाई! जब तुम जैनी कहलाते हो, तब तुम जुआरी, माँसाहारी होंगे — क्या हम ऐसी कल्पना करे? आश्चर्य है!

प्रश्न – शुद्धोपयोग 8वें गुणस्थान में मानते हैं?

उत्तर – भाई! प्रथम शुद्धोपयोगदशा औपशमिक सम्यग्दर्शन होने पर होती हैं। शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान से ही होता है। जो शुद्धोपयोग 8वें से मानते हैं, वे .... पात्र हैं। संवर कहो, शुद्धोपयोग कहो, शुद्धभाव कहो — एक ही बात है। मिथ्यादृष्टि को विवेक ना होने से उल्टा मानता है।

प्रश्न – जिज्ञासु को धर्म की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर – श्रीसमयसार, गाथा 144 के अनुसार करना चाहिए। और जो जीव अपने को जाने बिना मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? मैं किसको नमस्कार करता हूँ और क्यों करता हूँ? इत्यादि भाव भासन बिना, गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

इसलिए चेतो! पूज्य गुरुदेव के सानिध्य में रहो! सत्य बात मालूम करके अपना कल्याण करो, नहीं तो पछताओगे।

विकल्प आने पर लिख दिया है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता; निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।

– **बहिनश्री चम्पाबेन**

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आरोन

दिनाँक 4-4-1970

नमः श्रीबर्द्धमानाय: निर्धूत कलितत्मने।
सलोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – प्रभो – संसार का कारण कौन ?

उत्तर – एकमात्र शुभभावों के साथ अपनेपने की बुद्धि ही संसार का बीज है; कोई कर्म या पर, संसार का कारण नहीं है।

प्रश्न – शुभभावों के साथ एकत्वबुद्धि का अभाव कैसे किया जाए ?

उत्तर – एकमात्र आत्मा का लक्षण, चैतन्य है और रागादि का लक्षण, बन्ध है — ऐसा जानकर, अपनी वर्तमान पर्याय को अपने चैतन्य लक्षण स्वभावी की ओर एकाग्र कर दें तो एकत्वबुद्धि का अभाव और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। अनादि का जो पाप था, उसका अभाव हो सकता है। अब जैसे-जैसे स्वभाव में एकाग्रता करता जाता है, तब क्रम से परिपूर्ण शुद्धता की प्राप्ति हो जाती हैं। इसके अलावा ओर उपाय नहीं है।

प्रश्न – ज्ञानी, शुभभावों को हलाहल जहर समझता है, तो क्या वह शुभभावों को देखकर रोता होगा, दुःखी होता होगा ?

उत्तर – जैसे, दूज का चन्द्रमा दूज को बताते है, पूर्णिमा को बताता है, बाकी है उसे बताता है; उसी प्रकार ज्ञानी को जितनी शुद्धि है, उसे जानता है; पूर्णशुद्धि है, उसे जानता है; जितनी अशुद्धि है, उसे जानता है; इसलिए ज्ञानी की दृष्टि स्वभाव पर होती है। उसकी दृष्टि शुद्धपर्याय पर भी नहीं होती हैं, वह जैसे-जैसे अपने स्वभाव में एकाग्रता करता है, वैसे-वैसे अशुद्धि का अभाव शुद्धि की वृद्धि होते-होते पूर्णशुद्धि को प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी शुभभावों को परद्रव्य जानता है, वह उसके ज्ञान का ज्ञेय हैं।

प्रश्न – ज्ञानी होने पर क्या करता है ?

उत्तर – जो सिद्ध भगवान करते हैं, वह ज्ञानी करता है।

प्रश्न – जो मूर्तिक कार्य है, उसमें ज्ञानी कुछ करता है या नहीं ?

उत्तर – मूर्तिक पुद्‌गल है। सुबह से लेकर सब मूर्तिक कार्य हैं — आठ कर्मों का कार्य मूर्तिक, मन-वचन-काय सब मूर्तिक हैं। इनसे तो अज्ञानी का भी सम्बन्ध नहीं है। मूर्तिक पदार्थों में कुछ करना -धरना अज्ञानी भी नहीं कर सकता है तो ज्ञानी कुछ करे — ऐसा असम्भव है। अज्ञानी, मात्र शुभ-अशुभभाव का धनी बनता हैं; ज्ञानी शुद्धभाव कर सकता है। द्रव्यकर्म, नोकर्म का कर्ता तो अज्ञानी-ज्ञानी कोई भी नहीं, क्योंकि उसका, अर्थात् कर्मादि का कर्ता-कर्म पुद्‌गल ही हैं; जीव नहीं।

प्रश्न – क्या सम्यग्दर्शन मुश्किल है ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं। **सम्यग्दर्शन को मुश्किल कहनेवाला निगोद का पात्र है,** क्योंकि सम्यग्दर्शन अपने स्वभाव की ओर दृष्टि करे तो प्राप्त हो। इसके बदले भगवान की ओर, शुभभावों को ओर दृष्टि करे तो वह मुश्किल नहीं, असम्भाव है परन्तु अपने स्वभाव की दृष्टि करे तो तुरन्त उसकी प्राप्ति हो जाती है। जो वस्तु जहाँ हो, वहाँ खोजे तो तुरन्त मिल जाती है।

प्रश्न – जीवों को वर्तमान में किसकी रुचि हैं ?

उत्तर – निगोद की रुचि देखने में आती है, क्योंकि सब अज्ञानी बाहरी सामग्री में ही पागल हो रहे हैं। उसमें ऐसे पागल हो रहे हैं, जैसे पागल कुत्ते ने काट खाया हो। सामग्री आना, न आना उनके हाथ की बात नहीं है परन्तु वे उसमें अपनी बुद्धि लड़ा-लड़ाकर पागल बनते रहते हुए निगोद के पात्र हो जाते हैं। उन्हें पुण्य की रुचि है। **जिसे पुण्य की रुचि है, उसे निगोद की रुचि है।**

प्रश्न – क्या करें धर्म की रुचि हो ?

उत्तर – देव-गुरु-शास्त्र की आज्ञा में चलकर, अपने स्वभाव का आश्रय ले तो धर्म की रुचि हो।

प्रश्न – हे पूज्य गुरुदेव! वर्तमान में तो लोग अपने आपको दिगम्बर धर्मी कहलाकर, बाहरी क्रिया ठीक रहे तो धर्म हो — ऐसा मानते हैं, उसका क्या फल होगा ?

उत्तर – बाहरी क्रिया मैं करता हूँ — ऐसी मान्यता मिथ्यात्व का महान पाप है। वहाँ जो शुभभाव, अर्थात् मन्दकषाय है, वह पापानुबन्धी है, यह सब मिथ्यात्वमात्र है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

प्रश्न – शरीर की क्रिया और शुभभाव, आत्मा से अलग हैं — ऐसा शास्त्र के आधार से तो बुद्धि में आता है, परन्तु जीवों को बुद्धि में क्यों नहीं बैठता?

उत्तर – भाई! जब तक अपने स्वभाव का आश्रय लेकर, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट न करे, अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक यह बात बुद्धि में नहीं आ सकती है; इसलिए सबसे प्रथम अपनी आत्मा का आश्रय लेकर, सम्यग्दर्शन प्रगट करना प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

हे पूज्य गुरुदेव! आपकी जय हो।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय – दिनाँक 7-9-1972

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे परम पिता पूज्य गुरुदेव!

आपने वर्तमान में तीर्थङ्करों के विरह को भुला दिया है और पञ्चम काल को चौथा काल बना दिया है — ऐसा पात्र जीव जानते हैं।

(1) अहो! कार्य सब उस समय की योग्यता से ही होता है। उसका कोई पर करने-करानेवाला नहीं है। कार्य हुआ, वह उत्पाद है। उत्पाद, व्यय को सिद्ध करता है और ध्रौव्य को सिद्ध करता है। संसार में जितने भी द्रव्य हैं, वे कायम रहकर एक पर्याय का अभाव, एक का उत्पत्ति करते ही रहते हैं — इतनी बात स्वीकार करते ही दृष्टि अपने स्वभाव पर आवे तो यह बात मानी है; अन्यथा जैनशासन की हँसी की है।

(2) वर्तमान में एकमात्र अपनी ओर दृष्टि करे, उसी समय धर्म की प्राप्ति, जैनशासन का मालिक बन जाता है। जैनशासन अपना अनुभव है। अपना अनुभव हुए बिना, जैनशासन को जाना ही नहीं है। **वर्तमान में सच्ची बात सुननेवाले पात्र भी दृष्टि में नहीं आते, परिणमन की बात दूर है।**

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

– बहिनश्री चम्पाबेन

(3) नियमसार में अमृत परोसा हैं। पात्र जीव उसका पान करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि नियम, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता है और सार शब्द, अस्थिरता के राग के अभाव के लिए है। **'जीव उपयोगमयी'** — इतना सुनते ही पात्र जीव निहाल हो जाता है।

(4) कारणपरमात्मा तू है; अपने स्वयं की ओर दृष्टि करे तो कार्यपरमात्मा बनने में देर नहीं। अपने अन्दर ही केवलज्ञान व केवलदर्शनादि प्रगटेंगे। ज्ञानी को केवलज्ञान की भी इच्छा नहीं हैं; मात्र अपने स्वभाव पर ही दृष्टि रहती हैं। संसार के कार्यों में प्रवर्तते हुए दिखायी देते हुए भी, ज्ञानी निरन्तर अपने में ही प्रवर्तते हैं। अज्ञानी को यह बात नहीं जच सकती है।

(5) **हे गुरुदेव! वर्तमान में मुझे आपके अलावा और कोई नहीं दिखता है।**

हे प्रभु! आप ना होते तो ऐसा कहा जाता है कि जैनधर्म का लोप हो गया होता। जैसा अनादि से तीर्थङ्करों ने कहा है, कहेंगे, वैसा समस्त ज्ञानी जानते हैं, वैसा ही आपश्री कह रहे हैं।

वर्तमान में जिसको धर्म की प्राप्ति सिद्ध हुई है, किसी से वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। अपने में रहकर शान्ति की घूट पीना चाहिए, अर्थात् ज्ञानी तो अपने में ही रहता है; ज्ञानी को कोई भी विकल्प हो वह उनका कर्ता नहीं है; मात्र उनका व्यवहार से जाननेवाला है।

(5) चारों अनुयोगों में मुझे तो ऐसा लगता है — सबमें तू अपना आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति हो — ऐसा भगवान ने फरमाया है।

प्रश्न - कुछ मन्त्र बताओ - जिससे धर्म की प्राप्ति हो।

उत्तर - (1) अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं है — यह एक महामन्त्र हैं। ऐसा जाने तो दृष्टि स्वभाव पर आवे। यह मन्त्र श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 पर लिखा है।

(2) वास्तव में सर्व द्रव्यों में द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था, भली उत्तम पूर्ण योग्य है — इतनी बात माने तुरन्त दृष्टि स्वभाव पर आवे। यह मन्त्र, श्रीप्रवचनसार, गाथा 93 में आया है।

(3) मैं भगवान हूँ, बस इतना मान ले तो तुरन्त कल्याण हो जावे। अपनी

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

आत्मा/कारणपरमात्मा से पृथक किसी का भी मेरे से सम्बन्ध नहीं है — इतना मानते ही अपने भगवान के स्वयं को स्वयं से दर्शन होते हैं।

(4) अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और अरहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान से, अर्थात् जैसे अर्हत भगवान ने अपने द्रव्य-गुण अभेद की ओर दृष्टि की तो वे भगवान बना; उसी प्रकार हम अपने द्रव्य गुण अभेद की ओर दृष्टि दे तो मिथ्यात्व का अभाव, धर्म की प्राप्ति होती है। यह महामन्त्र, श्रीप्रवचनसार, गाथा 89 में आया है।

(5) मेरी सत्ता, मेरा द्रव्य गुण पर्याय हैं; इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की सत्ता उसका द्रव्य-गुण-पर्याय ही है — ऐसा जानकर, अपनी सत्ता की ओर दृष्टि दे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। यह महामन्त्र, श्रीप्रवचनसार, गाथा 86-87 में आया है।

(6) प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्यायों को ही चुम्बन करता है — ऐसा जानकर अपने द्रव्य-गुण अभेद की ओर चुम्बन करे तो धर्म की प्राप्ति होकर क्रमशः निर्वाण की प्राप्ति हो। यह महामन्त्र, श्रीसमयसार, गाथा 3 की टीका में आया है।

(7) एकमात्र कारणपरमात्मा जो स्वयं हैं, वह एक है; एक है तो शुद्ध है; शुद्ध है तो ध्रुव है और ध्रुव है तो वह ही एकमात्र उपलब्ध करने योग्य है। यह महामन्त्र, श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 में आया है।

वास्तव में चारों अनुयोगों में एक एक शब्द महामन्त्र है। उसकी ओर दृष्टि दे, अर्थात् अपने भगवान की ओर दृष्टि दे तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रमशः वृद्धि करके, परिपूर्णता की प्राप्त हो।

कैलाशचन्द्र जैन

जिसे आत्मा को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके मूलमार्ग को ढूँढ़ निकालता है।

– बहिनश्री चम्पाबेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सांवरकांठा

दिनाँक 16-11-1972

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - हे परम पिता पूज्य गुरुदेव! समयसार गाथा 369 से 371 का रहस्य क्या है ?

उत्तर - (1) जिस जीव को सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है, उसका सम्बन्ध, मात्र अपने त्रिकाली भगवान से ही होता हैं; बाहरी शरीर की क्रिया खराब हो, अणुव्रत महाव्रतादि भी ना हों क्योंकि देखो भावलिङ्गी मुनि है, उनके सिर पर अंगीठी जल रही हैं, स्यालनी खा रही है, मुनि घानी में पेले जा रहे हैं। वहाँ पर सम्यग्दर्शनादि हैं, बाहरी क्रिया खराब हैं; इसलिए सम्यग्दर्शनादि का सम्बन्ध, मात्र अपने त्रिकाली भगवान से है; नौ प्रकार के पक्षों से नहीं है, अर्थात् द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म, व्यवहाररत्नत्रय से नहीं है।

(1) चौथे गुणस्थान में जिन नारकी जीवों को सम्यग्दर्शन हैं, वहाँ बाहरी क्रिया खराब हैं।

(2) पाँचवें गुणस्थान में जिन तिर्यंचों को देशचारित है, बाहरी व्रतादि नहीं हैं।

(3) सातवें गुणस्थान में झूलते हुए मुनि को, स्यालनी भक्षण करती हो, जरा भी महाव्रतादि का विकल्प ना हों — ऐसा होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में भूमिकानुसार राग होने पर भी, वह कार्यकारी नहीं है; वह हेयबुद्धि से होता है, करता नहीं है। अभी जो अज्ञानी जीव, शुभभावों से, अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है; बारह व्रतादि ही श्रावकपना है; अट्ठाईस मूलगुण पालन ही मुनिदशा है — ऐसा मानते हैं वे धर्म के अयोग्य हैं, उन्हें कभी धर्म की प्राप्ति कर अवकाश नहीं है। इसलिए पात्र जीव तो अपने स्वभाव की एकाग्रता करके,

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

सिद्धदशा को प्राप्त हो जाता हैं और अज्ञानी, बाहरी क्रिया में धर्म मानते हुए निगोद में चले जाते हैं।

(2) जिन जीवों को मिथ्यादर्शनादि हैं, उनके बाहरी क्रिया अच्छी हो और शुभभाव भी हो तो भी उनसे धर्म का सम्बन्ध नहीं है।

(1) किसी जीव को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति खूब दिखती हो, परन्तु मिथ्यादृष्टि है।

(2) किसी जीव को बारह अणुव्रतादि का भाव हो और शास्त्र के अनुसार, शरीर की क्रिया अणुव्रतरूप दिखती हो परन्तु मिथ्यादृष्टि है।

(3) द्रव्यलिङ्गी, जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार समिति-गुप्ति आदि होते हैं और शुक्ललेश्या तक हो जाती है परन्तु मिथ्यादृष्टि है।

इसलिए मिथ्यादृष्टि को भी इनसे लाभ नहीं हैं परन्तु इनसे मुझे लाभ होता है, यह करते-करते मैं मोक्ष में चला जाऊँगा — ऐसी मान्यता से परम्परा निगोद का पात्र बन जाता है।

इसलिए हे आत्मा! तू ज्ञायक है, उसकी दृष्टि कर तो पर्याय से धर्म की शुरुआत, वृद्धि, पूर्णता हो; इसके अलावा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म, व्यवहाररत्नत्रय से धर्म का सम्बन्ध नहीं है।

(3) व्यवहाररत्नत्रय होना और उसके लाभ मानना, इसमें अन्तर है क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानों में होता है। ज्ञानी, अपना आश्रय बढ़ाकर पूर्णता को प्राप्त कर लेता है; अज्ञानी उससे लाभ मानता है, वह क्रम से निगोद चला जाता है।

इसलिए धर्म का सम्बन्ध, अपने त्रिकाली भगवान के आश्रय से ही है, और अधर्म का सम्बन्ध, अपनी आत्मा की ओर दृष्टि न करने से ही है।

बाहरी क्रिया या शुभाशुभभावों से धर्म या अधर्म का सम्बन्ध नहीं है परन्तु बाहरी क्रिया और शुभभाव अच्छे हैं — ऐसी मान्यता, अनन्त संसार का कारण है।

ज्ञानी की दृष्टि तो मात्र अपने स्वभाव पर होती है। उसकी दृष्टि शुद्धपर्याय पर भी नहीं होती है परन्तु स्वभाव की एकाग्रता करते-करते पर्याय में स्वयं शुद्धपर्याय प्रगट हो जाती है। इस रहस्य को मात्र ज्ञानी जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते हैं।

कैलाशचन्द्र जैन

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिए। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है।

– बहिनश्री चम्पाबेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सामली गाँव

दिनाँक 10-12-1972

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

हे पूज्य श्री! आपके चरणों में अगणित नमस्कार।

वास्तव में तो अपना भान होने पर, जितने सिद्ध हो चुके हैं, हो रहे हैं, होवेंगे, तथा अरिहन्तों, गुरुओं को सबको नमस्कार आ जाता है, क्योंकि ज्ञानियों की दृष्टि, मात्र स्वभाव पर ही होती हैं, स्वभाव पर दृष्टि आना सबको नमस्कार हो गया और नमस्कार विकल्प आना, यह तो हानिकारक है।

प्रश्न - हे पूज्य गुरुदेव! सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक को प्राप्त करने का क्या उपाय है?

उत्तर - एकमात्र जो अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड स्वयं जो आत्मा है, उस आत्मा की दृष्टि से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और उसकी, अर्थात् अपने स्वभाव में एकाग्रता बढ़ते-बढ़ते सिद्धदशा की प्राप्ति होती है; और कोई भी कारण नहीं है, मात्र यह ही है। बीच में अपनी अस्थिरता के कारण भूमिकानुसार राग आये, परन्तु ज्ञानी की दृष्टि राग पर नहीं होती है।

कोई भी परद्रव्य या विकारीभाव चाहे शुक्ललेश्या का शुभभाव हो, वह आत्मा के लिए जरा भी कार्यकारी नहीं है। शुभभाव होना और उसे मोक्ष का कारण मानना, इसमें महान अन्तर है क्योंकि ज्ञानी साधक को शुभभाव होता है, वह उसे हेय जानता है और अज्ञानी को अपने आप का पता नहीं हैं, वह शुभभाव को उपादेय मानता है, यह संसार का बीज है।

हे पूज्य श्री! ऐसा कहने में आता है — यदि आज आप ना होते तो पात्र जीवों का क्या होता?

पात्र जीव आपको नमस्कार करते हैं; अज्ञानी जीव आपसे ईर्ष्या करते हैं, अर्थात् अपनी आत्मा को दु:ख समुद्र में डुबाते हैं। अरे भाई! मात्र अपने ज्ञायक के आश्रय ही सब कुछ है; पर के आश्रय से कुछ नहीं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 16-12-1972

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - हे पूज्य गुरुदेव! जैनधर्म प्राणीमात्र के लिए है तो प्राणीमात्र का कल्याण कैसे हो ?

उत्तर - आज करो, कल करो, करोड़ों वर्ष बाद करो, जिसका भी कल्याण होना है, वह एकमात्र अपने स्वभाव के आश्रय से ही होगा। अर्थात्, विश्व में जब कोई भी जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेगा, उसी समय धर्म की प्राप्ति होगी, उसमें जरा भी देर नहीं होगी। यदि देर होती है, वह उल्टे रास्ते पड़ा है। जैनदर्शन का सार मात्र जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा जानले तो सारा दु:ख मिट जावे।

प्रश्न - वस्तु स्वरूप कैसा है, जिसके जानने से सारा दु:ख मिट जावे ?

उत्तर - (1) 'अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न, अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं है' — यह वस्तु स्वरूप है।

(2) समयसार, गाथा 3 में — प्रत्येक वस्तु अपने गुणों को ही चुम्बन करे है, स्पर्श करे है; पर को नहीं।

(3) 'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत् और सत् द्रव्य लक्षणम्' — इनका रहस्य जिसके हृदय में है, उसका सारा दु:ख अभी मिट जावेगा।

(4) वास्तव में आत्मा का किसी भी द्रव्यकर्म, नोकर्म से तो सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। अज्ञानी की पर्याय में एक समय की भूल है और भूलरहित ज्ञायकस्वभाव है, उसकी दृष्टि करते ही सारा दु:ख मिट जाता है — ऐसा सर्वज्ञ ने फरमाया है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिलें — ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं, वह जाँच कर पुरुषार्थ की ओर झुकना। चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। कषाय के वेग में बहने से अटकना, गुणग्राही बनना।

- बहिनश्री चम्पाबेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सावली AP रेलवे

दिनाँक 23-11-1972

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है,
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सद्दृष्टि निश्चय होय है॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

श्री शीतलप्रसादजी, पवनकुमारजी, आशारानी, नेमचन्द्रजी! तुम्हें, धर्म की प्राप्ति हो।

(1) संसार में सब जीव सुखी होना चाहते हैं लेकिन सुख कहाँ है? इसका पता नहीं होने से चारों गतियों में घूमकर निगोद में चले जाते हैं।

(2) तुम को दिगम्बर धर्म मिला, जिनवाणी का सुयोग मिला, अच्छा कुल मिला — यदि इतना होने पर भी, तुमने अपनी आत्मा का नहीं समझा तो समझ लो, मनुष्य जीवन हार गया।

(3) एक-एक समय का एक भव है, क्योंकि जैसी मति, वैसी गति; **इसलिए चेतो! वर्तमान में एक मात्र सत्यार्थवक्ता पूज्य कानजीस्वामी ही मेरी दृष्टि में हैं और सब वेषधारी कुगुरु दृष्टि में आते हैं। यदि तुम्हें अपना भला करना हो तो तुम सब सोनगढ़ तो पूज्यश्री के चरणों में हो आये हो, और उस बात को स्वीकार भी करते हो, तो सूक्ष्मरीति से द्रव्य-गुण-पर्याय को अभ्यास करो तो ठीक रहेगा।**

इसके लिए मैंने गुरुदेव के चरणों में रहकर कुछ कापियाँ लिखी हैं, यह भेदविज्ञान की अपूर्वकला हैं। यह मैंने निज हितार्थ लिखी है; किसी दूसरे के लिए नहीं।

(4) मुझे आज ऐसा राग आया कि यह कापियाँ पवन, शीतल, आशा तीनों पाँच-पाँच हजार रुपया, अर्थात् 15 हजार अभी निकाल दो; यह रुपया नेमचन्द्रजी को तथा सब कापियाँ भी। उसमें श्री नेमचन्द्रजी देहरादून वालों की हाजरी भी जरुरी है, वह पात्र जीव है। उसमें कोई अशुद्धि रह गयी हो तो वे स्वयं ठीक कर देंगे और से ठीक नहीं कराना है। तथा उनकी कीमत, जितने पड़े, उतनी ही रखनी हैं, उससे दुबारा छप जावेगी-जो जरुरतमन्द होगा, वह लेगा; मुफ्त नहीं

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

बाँटनी है और यदि सोनगढ़वाले इजाजत दें तो यह किताबें उनके बिक्री खाते में रख दी जावे। योग्य जीव खरीद कर अपना भविष्य विचार करेंगे। यह तो राग आया, लिख दिया, हो या ना हो, इसके हम जिम्मेदार नहीं हैं।

(5) एकमात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही कल्याण होगा – तीन काल, तीन लोक मे एकमात्र उपाय जिन–जिनवर–और जिनवर वृषभों ने बताया है। —समयसार की 11वीं गाथा; 12 अङ्ग का सार हैं।

(6) यदि आज ऐसा कहने में आता है कि पूज्य श्री कानजीस्वामी ना होते तो भव्य जीवों का क्या होता? मेरे लिए पूज्यश्री सब कुछ निमित्तरूप हैं। मैं उनके चरणों में अगणित नमस्कार करता हूँ। यह नमस्कार का भाव भी हानिकारक हैं, फिर भी पात्र जीव को आये बिना रहता नहीं है।

(7) मोक्षमार्गप्रकाशक में यह महामन्त्र हैं — 'अनादि निधन वस्तुएँ भिन्न–भिन्न अपनी–अपनी मर्यादा लिए परिणमैं हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं है।'

(8) पात्र जीव को कल्याण करना हैं तो वर्तमान में प्रथम प्रश्नोत्तरमाला तीनों भाग, मोक्षमार्गप्रकाशक और श्री समयसार परमागम का सूक्ष्म रीति से अभ्यास करें। जिसमें थोड़ी बुद्धि हैं, इसमें लगा दें, जैसा शास्त्र कहते हैं, उसरूप अपने स्वभाव की दृष्टि करे, तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

(9) वर्तमान में मिथ्यादृष्टि से भी द्रव्यकर्म–नोकर्म का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। मिथ्यादृष्टि की मर्यादा शुभाशुभभाव तक है।

(10) ज्ञानी तो वास्तव में चौथे गुणस्थान में ही सिद्ध हो गया, क्योंकि पर्याय में कर्ता–भोक्ताबुद्धि का अभाव हो गया; मात्र ज्ञाता रहा है। यह बात अज्ञानियों को नहीं जँचती है।

प्रश्न — हे पूज्य गुरुदेव! कृपा करके बतलाईये कि 356से 365 तक की गाथा का सार क्या है?

उत्तर — आत्मा में अनन्त गुण हैं, उनमें से ज्ञान–दर्शन–चारित और श्रद्धा, इन चार गुणों की बात की है।

(1) आत्मा, ज्ञानगुण से परिपूर्ण स्वभाववाला है, उसमें (आत्मा में) व्यवहाररत्नत्रयादि, द्रव्यकर्म, नोकर्म ज्ञेय हैं।

(2) अब, आत्मा व्यवहाररत्नत्रय का है या नहीं? कहते हैं कि नहीं है

शरीर, शरीर का कार्य करता है; आत्मा, आत्मा का कार्य करता है, दोनों भिन्न–भिन्न स्वतन्त्र हैं। उनमें 'यह शरीरादि मेरे' – ऐसा मानकर सुख–दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देह के लिए अनन्त भव व्यतीत हुए; अब, सन्त कहते हैं कि अपने आत्मा के लिए यह जीवन अर्पण कर।

– बहिनश्री चम्पाबेन

क्योंकि जिसका जो होता है, वह वही है। जैसे, आत्मा का ज्ञान होने से, ज्ञान वह आत्मा ही है; इसलिए ज्ञेय, व्यवहाररत्नत्रयादि आत्मा के नहीं हैं।

(3) यदि व्यवहाररत्नत्रयादि आत्मा के हो तो आत्मा के नाश का प्रसङ्ग उपस्थित होवेगा — परन्तु एक द्रव्य का, अन्य द्रव्य में संक्रमण का पहिले ही गाथा 103 में निषेध कर दिया है; इसलिए ज्ञान, पुद्गलादि का नहीं है।

(4) तो ज्ञान किसका है ? आत्मा का है। तो कहते हैं — आत्मा कर्ता; ज्ञान (कर्म) ज्ञेय, इस स्व-स्वामी सम्बन्ध से क्या साध्य है ? कहने का तात्पर्य है — आत्मा का ज्ञानगुण कर्ता; केवलज्ञान कार्य — ऐसा स्व-स्वामी सम्बन्ध में अटकेगा तो धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

इसी प्रकार श्रद्धा-चारित-दर्शन आदि में है। जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं। प्रत्येक में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक की पर्यायें होती हैं परन्तु भेद नहीं है। ज्ञानी तो वास्तव में सिद्ध के समान बन गया है।

(5) इन गाथाओं में छह बार तो 'एक द्रव्य का, अन्य द्रव्य में संक्रमण होने का तो पहिले ही निषेध कर दिया है' छह बार लिखा है 'स्व-स्वामीरुप अंशों के व्यवहार से क्या साध्य है ?' कुछ नहीं।

जब तक जीव, समयसार कलश 51-52-53-54 के रहस्य को नहीं जानेगा, चारों गतियों में घूमता रहेगा और इनका रहस्य जान लेगा तो पार हो जावेगा। जो जीव, दो द्रव्यों के व्यवहार कथन को सच्चा मानता है, वह कभी सुलट नहीं सकता है — ऐसा 55 कलश में फरमाया। ज्ञानी तो चौथे गुणस्थान से 'ज्ञानी तो अपनी ओर पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' — ऐसा कलश 50 में बताया है।

करता परिनामी दरव, करम रुप परिणाम
किरिया परजय की फिरनी, वस्तु एक त्रय नाम
एक परिणाम के न करत दरव कोई
दोइ परिनाम एक दर्व न धरतु है।
एक करतूति दोई दरव कब हूँ ना करे
दोइ करतूति एक दर्व न करतु है
जीव पुद्गल एक खेत-अवगाही दोऊँ
अपने-अपने रूप को उन दखु है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

जड़ परिनानि को करना है पुद्गल
चिदानन्द चेतन सुभा आचरतु है ॥

इतनी स्वतन्त्रता है। इतनी स्वतन्त्रता मानते ही पर्याय में कर्ता–भोक्ता की खोटी मान्यता समाप्त हो जाती है और सिद्ध का साथी बन जाता है।

जय गुरुदेव!

भवदीय
कैलाशचन्द्र जैन

सावली, 17–12–1972

आत्मार्थी बन्धु पवनजी,

धर्म की प्राप्ति हो!

(1) प्रत्येक जीव सुख के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहा है परन्तु उसे यह पता नहीं है कि दु:ख क्या है ? और सुख क्या है ? विचारो! बगैर सोचे समझे, परवस्तुओं में, पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख की कल्पना करके, जैसे हिरन खुशबू के लिए जंगल में दौड़ता; उसी प्रकार अज्ञानी जीव, सुख के लिए चारों तरफ दौड़ रहा है परन्तु सुख की प्राप्ति जरा भी नहीं हुई। कारण कि सुख तो अपने स्वभाव का आश्रय ले तो प्रकट हो, परन्तु यह उसकी (सच्चे सुख की) परवाह न करके, पाँचों इन्द्रियों के विषयों में तथा जिनसे सुख होना मानता है, उन्हें इकट्ठा करने में तथा जिनसे दु:ख होना मानता है, उन्हें हटाने में ही अपना मनुष्य–जीवन समाप्त कर देता है और दूसरी गति में चला जाता है, फिर जहाँ पहुँचता है, वहाँ भी इसी प्रकार मानता हुआ, यह अज्ञानी जीव चारों गतियों में घूमकर कितनी ही बार निगोद हो आया। इसीलिए 'हे मुमुक्षु भाई! तुझे मनुष्य जन्म मिला है, सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का निमित्त हुआ है तथा हमें भी अपनी मूर्खतावश आपको सम्बोधने का विकल्प आया है, (यद्यपि यह विकल्प हमारे लिये हानिकारक है) और यदि इतना अवसर आने पर भी यह जीव नहीं चेतता तो ज्ञानियों को तो उनकी होनहार ही विचार में आने पर समता आती है।

(2) धर्म का साधारण ज्ञान (छहढाला व जैन सिद्धान्त प्रवेशिका आदि पढ़ने

तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है, परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।
– ***आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल***

पर भी) होने पर भी हे भाई! तुम्हें अपनी ओर सन्मुख होने का विचार नहीं आता, बड़ा आश्चर्य है। तुम्हारी आत्मा भगवान है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। तुम उसको भूल रहे हो, जरा दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखो, तुरन्त शान्ति मिलेगी।

(3) आकुलता दुःख है और आकुलता का अभाव होना ही सुख है। इस आकुलता के अभाव के लिये दो बातें हैं –

(1) अपने रागादिक दूर हों।

(2) या आप चाहें उसी प्रकार सब द्रव्य परिणमित हों।

इनमें से कोई एक बात हो जाये तो आकुलता मिटे। अब विचारो– आपकी इच्छानुसार तो सर्व द्रव्य (पदार्थ) परिणमन नहीं कर सकते क्योंकि किसी भी द्रव्य का परिणमन, किसी के अधीन नहीं है। इसलिए अपनी ओर दृष्टि करने से रागादिक दूर होकर धर्म की प्राप्ति होती है और आकुलता की समाप्ति, धर्म की प्राप्ति का ही दूसरा नाम है और यह कार्य हो सकता है, क्योंकि आप स्वयं आत्मा हैं–भगवान हैं।

(4) अब प्रश्न आता है कि यह कार्य कैसे हो?

सो हे भाई!

(1) पर से तो किसी भी प्रकार का, चाहें वह तीर्थंकर हों, कोई सम्बन्ध नहीं है, यह निर्णय कर।

(2) पर्याय में जो राग–द्वेष होता है, वह एक समय का है, वह अपना ही अपराध है; किसी पर ने नहीं कराया – ऐसा निर्णय करके अपने भगवान आत्मा की ओर दृष्टि करते ही यह कार्य हो जाता है। यह सहज है–आसान है लेकिन जो कार्य आप करते हैं, वह तो पुण्य के योग से ही तो होता है। उसमें तुम्हारी जरा भी होशियारी नहीं परन्तु अपनी ओर दृष्टि करके शान्ति प्राप्त करना, इसमें अपनी होशियारी है। सावधान! सावधान!! यह अवसर चला गया तो फिर पछताना पड़ेगा।

(5) धन आदि कमाने का जो भी कार्य आप करते हैं, उसकी कोई सीमा है, कि कितना धन हो जावे तो सुख हो? जरा विचारो, यदि तुम भगवान को

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

केवलज्ञानी मानते हो तो जो उनके ज्ञान में आया है, वही होगा या नहीं; उसमें जरा भी हेरफेर नहीं होगा – ऐसा स्वतन्त्र सम्बन्ध है।

'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कबहु ना होत, काहे होत अधीरा रे॥'

यदि इतना माने तो कर्ता–भोक्ता की बुद्धि का अभाव होकर, धर्म की प्राप्ति हो।

(6) विश्व में छह जाति के द्रव्य हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त–अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण अनादि–अनन्त है। प्रत्येक गुण अनादि–अनन्त कायम रहता है। उसमें एक पर्याय का अभाव और एक की उत्पत्ति – ऐसा निरन्तर होता है, होता रहा है और होता रहेगा – ऐसी परमेश्वरी व्यवस्था है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी आया है – 'अनादि निधन वस्तुएँ जुदी–जुदी (अलग–अलग) अपनी–अपनी मर्यादा लिये परिणमे हैं। कोई किसी का परिणामाया परिणमता नाहिं।' यह वस्तु स्वभाव है, इसको मानते ही सारे दुःख का अभाव हो जाता है।

(कृपया पढ़े – मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52)

(7) अपनी पात्रता के बिना भगवान भी किसी को नहीं सुधार सकते, फिर हम क्या सुधार सकते हैं? आपको पत्र लिखने का विकल्प आया है। हम जानते हैं कि हम किसी को बिगाड़–सुधार नहीं सकते – फिर भी अपनी मूर्खतावश ऐसा भाव आया है। तुम समझो! समझो!!

(8) **वर्तमान में एक सत्य वक्ता मेरे विचार से जहाँ तक मैं जानता हूँ, एकमात्र पूज्य श्री कानजीस्वामी हैं। आज पूज्यश्री न होते तो पात्र जीवों का क्या होता?**

(9) हे भाई! चाहे आज करो, चाहे कल करो, चाहे हजार वर्ष बाद करो; जब भी धर्म की प्राप्ति होगी, एकमात्र अपने आश्रय से ही होगी; पर से या विकल्पों से नहीं – ऐसा जैनागम का सार है। समयसार, गाथा 11 में भूतार्थ आश्रित धर्म की प्राप्ति, यह चारों अनुयोगों का सार है।

(10) **'अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु भूख न मेरी शान्त हुई।**
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥'

इसलिए इच्छारहित अपने स्वभाव का आश्रय लो तो शान्ति होवे।

जैसे – कोई अपने हाथ में पत्थर लेकर अपना सिर फोड़ले तो पत्थर का क्या दोष? उसी प्रकार जीव, अपने रागादिकभावों से पुद्गल को कर्मरूप परिणमित करके अपना बुरा करे, तो कर्म का क्या दोष?

–आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

संसार में चारों तरफ ठग हैं। सच्चा स्वरूप समझानेवाला कोई न मिलेगा।

(11) लौकिकरूप से सात व्यसन व पाँच पापों से लौकिक सज्जन को दूर रहना चाहिए। संसार में कोई किसी का साथी नहीं है, किसी को साथी मानना मिथ्यात्व है।

(12) अन्त में अब क्या करना चाहिए?

उत्तर – जैसे गाय खाने के बाद जुगाली करती है, उसी प्रकार छहढाला आदि का अध्ययन करके उनका मनन करो।

'चेतन को है उपयोगरूप, चिन मूरत बिन मूरत अनूप।
पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इतने न्यारी है जीव चाल॥'

इसमें विचारो कि मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। आँख, कान, शरीर मेरे नहीं, मैं चैतन्यस्वरूप हूँ; शरीरस्वरूप नहीं हूँ। आज तक रुपया, पैसा, स्त्री, पुरुष आदि को अनुपम माना, परन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि तू अनुपम है। तेरा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल से कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अज्ञानी जीव को इनसे अपना सम्बन्ध लगता है। इसलिए शास्त्र की बात प्रमुख करके, वह अपनी मान्यता को गौण करके विचार करोगे तो शान्ति मिलेगी। छहढाला की दूसरी ढाल का सूक्ष्म अध्ययन करके, उस पर विशेष विचार करो। इससे अपनी गलती का पता चलेगा और क्या करने से शान्ति प्राप्त होगी? – इस बात का पता चलेगा। अपनी बुद्धि को अपनी ओर लगा दो, कल्याण होगा।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 7-2-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशा, स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) अजीवतत्त्व सर्वथा भिन्न है। अनादि से अजीवतत्त्व ही अपने को मान रहा है।

(2) अजीवतत्त्व को अपना मानने के ही कारण है, चौबीस घण्टे दु:खी हो रहा है।

(3) जिस समय अपने को जीवतत्त्व मानेगा, तभी सुखी हो जावेगा।

(4) क्या आपको जैसा में लिखता हूँ — ऐसा लगता है ? तो ठीक —

(5) यह व्यर्थ में सांड कूड़े पर सिर मारकर, मैंने बहुत किया — ऐसा मानता है, ऐसी ही अज्ञानी की दशा है,

(6) बात जरा सी है — समझो!!

(7) भेदविज्ञान ही सार है।

(8) तुम जीवतत्त्व हो; अजीवतत्त्व नहीं हो, मैं तो इतना ही जानता हूँ।

(9) जब कभी यह जीव अपने को जीवतत्त्व मानेगा, अजीवरूप से नहीं मानेगा, आस्रव-बन्ध भाग जावेगा, संवर-निर्जरा प्रगट हो जावेगी।

(10) पूज्य गुरुदेवश्री ही इस बात को बतलाते हैं, यह अचम्भे की बात है।

जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही तत्त्व संक्षेप

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

कर्म के उदय से जीव को विकार होता है - यह मान्यता भ्रम-मूलक है। 'हे मित्र! ...परद्रव्य ने मेरा द्रव्य मलिन किया, जीव स्वयं ऐसा झूठा भ्रम करता है। ...तू उनका दोष जानता है, यह तेरा हरामजादीपना है।'

- पण्डित दीपचन्द कासलीवाल

दिनाँक 12-3-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशा, स्वप्निल,
समस्त मुमुक्षु समाज,

जय-जिनेन्द्र!

(1) सम्यग्दृष्टि को छोड़कर, आज सारा विश्व दु:खी है।

(2) क्यों दु:खी है ? स्व-पर का यथार्थ ज्ञान ना होने से।

(3) सुखी कब होगा ? जब स्व-पर का यथार्थ ज्ञान करेगा।

(4) होता क्यों नहीं ?
यह शरीर को ही स्वयं मान के बैठा है - जिसको अलग करना है, उसे ही स्वयं मान बैठा है।

(5) पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी का जिसको योग बना — वह नहीं सुधरा, अचम्भा है!

(6) पूज्य गुरुदेव का योग बनने पर क्यों नहीं सुधरा ? यात्रा, यम, नियम, व्यवहार में पागल बना रहने के कारण।

(7) समय रहते अपने को समझ तो ठीक है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

देहरादून
दिनाँक 17-4-1994

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी व समस्त परिवार

जय-जिनेन्द्र!

(1) मेरी भावना है, सब जीव सुखी हों। वे सुखी तभी होंगे, तब अजीवतत्त्व को अपना न माने।

(2) अनन्त काल का दु:ख क्या है ? अजीवतत्त्व को अपना मानना, उसे परिणमाने का भाव ही दु:ख है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

सर्व प्रकार के मिथ्यात्वभाव को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। संसार का मूल, मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नहीं है। मिथ्यात्व का अभाव होने पर शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त करता है; इसलिए जिस तिस प्रकार से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है।

-आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

(3) आप तो साक्षात भगवान हो; शरीर नहीं हो — इतना ही मानना-जानना है।

(4) मैं 18-4-1994 को चलकर, 19-4-1994 को बिजौलियाँ पहुँच जाऊँगा, वहाँ पर 1 महीना तो रहना है - बाद में निर्णय अभी कुछ नहीं।

(5) जब आप को जरा भी अशान्ति हो, नीचे लिखे मन्त्र, जो लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पर लिखे हैं - साथ ही 17 मन्त्र (आध्यात्मिक सिद्धान्त) पिछले पेज पर लिखे हैं - विचार कर लेना। इनमें से कोई भी बात मान लोगे तो बेड़ा पार हो जावेगा।

(6) याद रहे, प्रवचनसार जो सहजानन्द वर्णी का, उससे ही गाथा तथ्य विचार उसे देखना, इसको तथा जो आप पर है, उसमें अन्तर कुछ नहीं है; मात्र समझने में आसानी रहेगी। दूसरा जो भेजा है, वह सादा अर्थ किया है।

(7) मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 77 से 82 तक अत्यन्त जरुरी है।

मेरा पक्का विश्वास है — आपको शरीर सम्बन्धी बीमारी भी न रहेगी और जल्दी ही — अपने को अपने आश्रय लोगे तो सुखी होओगे।

(8) आपको तकलीफ, पर से एकत्वबुद्धि की है; शरीर सम्बन्धी बीमारी, अपने आप का पता न होने के कारण, शरीर की बीमारी को अपनी मानता है।

(9) अपनी स्वाध्याय बराबर चालू रखें।

(10) आपके शरीर की तबियत ठीक ना होने पर भी, मैं बाहर जा रहा हूँ; मुझे बच्चा समझकर क्षमा करना। मैं हर समय आपके पास हूँ। तत्त्व का विचार ही मेरा पास होना है।

(11) यहाँ बीना-राजेन्द्रजी आपको कितना याद करते हैं, मैं नहीं कह सकता हूँ।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 5-7-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी व समस्त परिवार

जय-जिनेन्द्र!

(1) सारा विश्व अजीवतत्त्व में अपनेपने की मान्यता से ही पागल और दु:खी हो रहा है। जब तक यह अजीवतत्त्व को अपना मानेगा, दु:खी ही रहेगा। जब कभी भी, किसी समय अजीवतत्त्व को अपना ना मानेगा - सुखी हो जावेगा।

(2) मैं जीवतत्त्व हूँ, अजीवतत्त्व नहीं — इसको विचार गहरा चलना चाहिए — बात यही है।

(3) सारे विश्व का कार्य स्वयंमेव ही हो रहा है, जो आपको दिखता है, वह सारा कार्य पुद्गल का ही है - व्यर्थ में पागल बना फिरता है।

(4) जिस जीव का, जिस क्षेत्र में, किस काल में, जिसकी हाजरी में, जिस प्रकार होना है - उसे जिनेन्द्र भी हेर-फेर नहीं कर सकते - फिर क्या?

(5) **पूज्य गुरुदेव चले गये, बाकी सब धोखा है।** प्रेम से स्वाध्याय में लगो- जब फुरर्सत मिले, आशा सहित आवो, परन्तु वहाँ की चिन्ता वहीं छोड़कर आवो। यहाँ से व्यर्थ में बाहर के टेलीफोन आदि में भी न पड़ो तो ठीक रहेगा।

(6) बात जरा सी है — स्वयं भगवान है, अपने को मुर्दा मान रहा है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

इसलिए अवसर चूकना योग्य नहीं है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिए श्रीगुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

दिनाँक 14-7-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशा, स्वप्निल आदि

जय-जिनेन्द्र!

बीना से पता चला — शरीर सम्बन्धी आप ठीक चल रहे हैं, प्रसन्नता हुई। प्रात: रोटी खाने से 2 घण्टा—शाम का 1 घण्टा नियम से चलोगे, बिल्कुल ठीक रहेगा।

(1) मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 259 नीचे लेकर 260 तक पढ़ियेगा, II नौंवाँ अधिकार, III हमारे वाला तीसरा भाग, पृष्ठ 275 से अन्त तक पढ़ना।

(2) चारों अनुयोगों का सार, स्वयं जीवतत्त्व है; व्यर्थ में अजीवतत्त्व में पागल हो रहा है, तुम्हारे जैसा बुद्धिशाली के लिये योग्य नहीं है। आप जिनवाणी में विशेषरूप अध्ययन करते हो, जो पढ़ते ही ठीक प्रकार से — मैं भी ऐसा नहीं कर सकता। आप अजीवतत्त्व से भिन्न, अपना आश्रय करें।

(3) सुना है आगरावाले मोक्षमार्गप्रकाशक, 10 हजार छाप रहे हैं; उनसे कहना है जिल्दवाला ही छपना है, अर्थात् जयपुरवाले की तरह ही छापना है। प्रस्तावना अपनी दो, कोई हरज नहीं।

(4) छापने आदि का चक्कर भी मूर्खता भरा है, अपना कार्य कर लेना ही योग्य है।

(5) जब फुरसत मिले-आइयेगा स्वागत है — अलीगढ़, झगड़े छोड़कर आना, व्यर्थ में टेलीफोन में ही पागल बना रहे, ठीक नहीं।

(6) पूज्य गुरुदेव तो चले गये, सब जगह धोखा है-धोखा है। सावधान! सावधान!! तुम पर कहना आ गया, उसे हजम करो।

(7) आप सब कार्य में निपुण हों, अब अपना कार्य करके जीवन सफल बनाओ।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 15-7-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी

जय-जिनेन्द्र!

कल टेलीफोन जो किया था, उसी के बाद पत्र लिख रहा हूँ।

(1) यदि आपको हमारा विश्वास है तो आप सोनगढ़ अभी न जावें, वहाँ पर भयंकर गर्मी पड़ती है, जिसका मैं कह नहीं सकता। यदि आप अपनी मर्जी से गये, बाद में पछताना पड़ेगा।

(2) 30-10-1994 के बाद ग्यारहवें महीने से फरवरी तक, जब चाहे आप सोनगढ़ चलें-मैं आपके साथ चलूँगा, आप कहेंगे तो 1 महीना भी ठहरूँगा।

(3) परन्तु याद रखना..... जो तुमको कहना आ गया, उसे हजम करो, 9वें अधिकार तक इसे बारम्बार पढ़ो, उत्तम यह रहेगा। मोक्षमार्ग की किरणें I, II, III आपके पास हैं, आप पढें-पढ़ायें।

(4) 10 वें महीने के बाद, 15 दिन पहले आपके पास रहकर, तब आगरा का प्रोग्राम रखा है.... उसकी जगह बिजौलियाँ जाया जा सकता है, वहाँ पर जाना भी है, मैंने दो महीने को कहा हुआ है, बिजौलियाँ को।

(5) आप, सोनगढ़-बिजौलियाँ 10 वें महीने तक बाहर नहीं जाना, यदि आना-जाना है तो देहरादून आइये, आपका स्वागत है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है कि पूजा आदिक अर्थात् भगवान की भक्ति, वन्दना, शास्त्र स्वाध्याय, व्रतसहित हो, तो पुण्य है और मोह-क्षोभरहित आत्मा का परिणाम, धर्म है।

– **आचार्य कुन्दकुन्ददेव**

दिनाँक 24-7-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) पूज्य गुरुदेव की स्थली में रहने की भावना उत्तम है परन्तु लोकाकाश में कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ से अनन्त सिद्ध ना हुए हो – फिर भी 10 वें महीने के बाद, जितने दिनों को आप चाहेंगे, मैं साथ चलूँगा।

(2) आपसे प्रार्थना है कि आपने अगस्त में 15 दिन आने को लिखा है और जो ज्यादा से ज्यादा अर्थात् 1 महीना सोनगढ़ आप रहना चाहते थे, वह देहरादून रहें — ठीक रहेगा।

(3) कहीं भी रहो, मात्र अजीवतत्त्व को अपना नहीं मानेगा, तभी मोक्षमार्ग में प्रवेश हो जावेगा।

(4) जब अनुभव हो जावेगा, आपको पता चलेगा, यह तो बहुत आसान है; व्यर्थ में अजीवतत्त्व में उलझा हुआ है। स्वयं जीव है, उस पर दृष्टि देता ही नहीं है।

(5) मोक्षमार्गप्रकाशक का सातवाँ अध्याय व नौंवाँ अधिकार, बार-बार पढ़ना योग्य है।

(6) अपने से भिन्न में कुछ किया नहीं, करेगा नहीं; व्यर्थ में पागल बना फिरता है।

(7) जब नारकी, तिर्यंच कर सकता है, इसे मुश्किल क्या है ? मात्र पर में अपनापना का ही उन्मूलन है – सावधान-सावधान!!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 15-7-1998

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशा, स्वप्निल आदि

सभी मुमुक्षु समाज जय-जिनेन्द्र!

(1) 2 प्रति, छहढ़ाला पाँचवी ढाल का प्रवचन है, भेजी है।

(2) स्पर्शादि जितना दिखता है - इसके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; व्यर्थ में पागल बना फिरता है। स्वयं जीव है, अपने को जड़ मानता है — आश्चर्य!!

(3) धर्म, आसान है परन्तु उल्टे रास्ते चलता है; इसलिए प्राप्त नहीं होता।

(4) सर्वविशुद्धि प्रवचनरत्नाकर, दो भाग मिल गये, धन्यवाद! आप उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ना, हो सके आशा, अभयजी आदि के बीच में चलाना।

(5) अपने को न समझा तो मनुष्य जन्म पूरा हो गया।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

ब्र० अभयकुमार जैन, देहरादून

दिनाँक 8-8-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी व मुमुक्षु समाज

जय-जिनेन्द्र!

(1) जिनके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं, उसमें फँसा हुआ — व्यर्थ से दु:ख उठा रहा है।

(2) कैलाशचन्द्रादि को अपना न माने तो आत्मा, अनुभव में आ जावेगा; और कोई उपाय नहीं है।

(3) सात तत्त्वों में अजीवतत्त्व को अपना न माने, तभी मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा।

(4) हर आदमी, शरीर की बात करता है और जैन होने पर भी, शरीर की बात विचारे — मनुष्य जन्म व्यर्थ चला गया। अभय आदि सबको जय-जिनेन्द्र!

(5) सर्वविशुद्धि अधिकार देखो।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

जो प्राणियों को पञ्च परावर्तनरूप संसार के दु:खों से निकालकर स्वर्ग और मोक्ष के बाधारहित सुखों को प्राप्त करा देता है, वह **धर्म** है।

– **श्री समन्तभद्राचार्य**

दिनाँक 21-8-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी

जय-जिनेन्द्र!

आपको धर्मप्राप्ति के निमित्त मेरी भावना यह है :—

(1) आप आशा, स्वप्निल सहित 20 जनवरी से 20 फरवरी तक बिजौलियाँ मेरे पास रहें –

(2) टेलीफोन करने-कराने-अनुमोदक आदि का झंझट छोड़कर आवें तो अति उत्तम रहेगा।

(3) खाने-पीने का जैसा आप कहेंगे, वैसा इन्तजाम हो जावेगा।

(4) मेरे विचार से आशा बेटी 20 जनवरी तक बिल्कुल ठीक हो जावेगी।

(5) पूरा मुमुक्षु मण्डल बिजौलियाँ आपके आने का इन्तजार में रत है।

(6) एक महीना – जैसा मैं कहूँ, वैसा कर लो – अति उत्तम रहेगा।

(7) मुझे क्या पढ़ाना है ? वास्तव में निज आत्मा, पवन-आशा-स्वप्निल आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध भगवान है — इस निज आत्मा का पवन-आशा-स्वप्निल आदि अजीवतत्त्व से कभी सम्बन्ध रहा नहीं, रहेगा नहीं, अभी भी है नहीं – यह व्यर्थ में पागल बना रहता है — यह पढ़ाना है।

(8) मेरे विचार से इस अवसर को मत गवाँ देना — आपको बिजौलियाँ में सच्चा लाभ हर तरह से मिलेगा — सो जानना।

(9) मेरी फिर प्रार्थना है, आप चाहे कितनी परेशानी हो, 20 जनवरी से 20 फरवरी तक अवश्य ही आवें — अपने साथ अपने मतलब का सही नौकर साथ में ले आवें और यदि न लावें; तब भी मैं आपका नौकर हूँ ही —

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 13-12-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निल आदि

जय-जिनेन्द्र!

(1) संसार में हमेशा रहना पड़ेगा -यदि अपने को समझ लिया तो सुखी होकर रहना पड़ेगा और ना समझा तो दु:खी होकर रहना पड़ेगा।

(2) अपने को कैसे समझा जावे ? तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है, इतनी सी बात है। अज्ञानी अपने को शरीर ही (अजीव ही) मान रहा है, और अजीव के कार्यों को अपना मानकर, पर अजीवों से सुख की ज्ञान की कल्पना करके पागल बना फिरता है।

(3) आपकी बुद्धि अच्छी है परन्तु बच्चों जैसी चंचल है। उस चंचलपने का अभाव कैसे हो ? स्वयं अनादि-अनन्त, अनन्त गुणों का धारी, अभेद स्वयं-सिद्ध वस्तु है, उसका पवनादि से सर्वदा सम्बन्ध नहीं है।

(4) जब अस्वस्थ अवस्था होती है, निर्णय में ताकत नहीं रहती है, पर की ओर ही मन जाता है।

(5) मेरी दिली भावना है, आप आराम का जीवन बनाओ, तब सब ठीक हो जावेगा, वह आप जानते हैं और मेरा विश्वास है कि अभी शरीर की अपेक्षा 24 वर्ष रहना है। यदि शान्ति का जीवन बनाओगे तो ठीक रहेगा।

(6) बाहर कहीं भी कुछ नहीं है। अबकी बार सोनगढ़ से आने के बाद नियम ले लो कि कहीं भी नहीं जाना है। यदि जाना ही है तो देहरादून आना या जहाँ मैं हूँ, वहाँ आना और कहीं नहीं।

(7) जो आप जिनवाणी तैयार कर रहे हैं, अति उत्तम कार्य है, परन्तु उसमें शान्ति से करो तो अच्छा रहेगा, चाहे ज्यादा समय लगे। यदि सोनगढ़ में, चाहो तो मेरे विचार में श्री चन्दुभाई से भी इसमें विचार कर लेना। सीट बुक होते ही कृपया सूचना देना। 30-4-1995 की रात तक ट्रेन से पहुँच जाऊँगा।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। परद्रव्यों में आत्मबुद्धि छोड़कर, अपने ज्ञाता-दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव (ज्ञान) और ज्ञायकस्वभाव में ही प्रवर्तनरूप आचरण, **धर्म** है।

- पण्डित सदासुखदास

दिनाँक 21-12-1994

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनकुमारजी, आशाजी व स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) विश्व में जो होना है, वही हुआ है, वही हो रहा है और वही होता रहेगा — क्या इसका विश्वास है ? यदि है, तो दृष्टि स्वभाव पर आनी चाहिए।

(2) सारा विश्व एक तरफ, निज आत्मा एक तरफ; निज आत्मा का, सारा विश्व स्वयं में भी हेर-फेर नहीं कर सकता है। क्या यह माना है ?

(3) तुम स्वयं साक्षात प्रगट अभी भगवान हो; शरीर पवनादि नहीं हो - क्या यह माना है ? यदि माना तो दृष्टि स्वभाव पर आती है।

(4) **आज पञ्चम काल में (70 वर्षों में) जिसे पूज्य श्री कानजीस्वामी का योग बना और उनकी बात मानी — उसका बेड़ा पार हो जाता है।**

(5) मनुष्य भव का एक-एक समय अमूल्य है - यह मनुष्य भव, चारों गतियों के अभाव-निमित्त मिला है- तू जीवतत्त्व है; अजीव पवनादि नहीं हैं, इसमें क्या चिन्ता है ! जो चिन्ता करता है, वह जैन नहीं है।

(6) चिन्ता किसको होती है ? जो पर में हेर-फेर करना मानता है। अरे भाई ! विश्व में तो रहना ही है। यदि चिन्ता न रही तो सादि-अनन्त सुखी रहेगा और चिन्ता रही तो अनन्त संसार में सड़ना पड़ेगा-

(7) जो आपको दिखता है, मृतक कलेवर है; इसमें ही अज्ञानी अपनापना मानकर दु:खी हो रहा है; अपनापना ना माने तो तुरन्त सुखी हो जाये।

(8) जैसे सिद्धालय में सिद्ध भगवान के साथ किसी भी परपदार्थ का सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नहीं है; उसी प्रकार अज्ञानी के साथ भी है नहीं परन्तु अज्ञानी, व्यर्थ में सम्बन्ध मानता है। उनमें यह मेरा-यह मेरा में व्यर्थ में पागल बना रहता है। **सावधान! सावधान!! तुमने पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को देखा है — फिर क्या ? तुम भगवान हो।**

(9) सारे चारों अनुयोग का सार — तू जीवतत्त्व हैं; अजीवतत्त्व नहीं है,

— इतना यथार्थ मानते ही श्रुतकेवली बन गया। इतना कौन मानेगा ? जिसके मोक्ष का किनारा नजदीक आया है। अरे भाई ! दिगम्बर धर्म, पूज्यश्री का समागम, फिर क्यों रोना रोता है ? क्यों चिन्ता रहती है ? विश्व के प्राणी एक परमाणु में भी हेर–फेर नहीं कर सकते हैं – 'कर विचार तो प्राप्ति कर' —

a) अनादि निधन वस्तुएँ भिन्न–भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमत होती हैं, हो रही है और होती रहेंगी, इसमें इन्द्र–अहमिन्द्र भी हेर–फेर नहीं कर सकता।

b) प्रत्येक वस्तु अपने–अपने गुण–पर्यायों को ही स्पर्श करती है, करती रही है, करती रहेगी तथा अनादि –अनन्त प्रत्येक वस्तु एक समय में ही एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय, द्रव्य–गुण ध्रौव्यरूप रहती हुई रह रही है, रहेगी, रह चुकी हैं।

c) तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है — इतना मानते ही सारा जैनदर्शन उसके हाथ में आ जाता है, वह भगवान का लघुनन्दन बन जाता है।

d) तू भगवान है, तू जीवतत्त्व है, तू ज्ञायक परमेश्वर है — तेरे में अप्रमत्त–प्रमत्तदशा भी नहीं है –परन्तु जब यह मानेगा, तभी साक्षात परमेश्वर अनुभव में आ जावेगा। आता क्यों नहीं है ? जो दिखता है, उसी को सब कुछ मान रहा है।

e) संज्ञीपना जो मिला है, उसमें मोक्ष में जाने को मिला है परन्तु उसे यह विश्वास नहीं है कि मैं भगवान हूँ – तथा मुझ भगवान का परपदार्थों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

f) पत्र लिखने का कारण; तुम कुछ उदास से नजर आये – अत: विचार आया –

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 16-1-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निल आदि

जय-जिनेन्द्र!

(1) अपने को आत्मा मानकर ही तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए, तभी जिनवाणी का रहस्य समझ में आने का अवकाश है।

(2) जिस समय अपने को जीवतत्त्व मानेगा, तभी मोक्षमार्ग शुरु हो जावेगा। मोक्षमार्ग क्यों नहीं होता? अपने को अजीवतत्त्व मानने के ही कारण।

(3) आपने इस महीने में आने को कहा था - क्या रहा? जैसा आप ठीक समझें, करे, वही उत्तम है। जो होना है, वही हो रहा है।

(4) विश्व में कभी भी आप का (किसी का भी) अभाव नहीं होगा, जो जीव, अजीवतत्त्व से भिन्न, अपने को जीवतत्त्व मान लेता है, वह सादि-अनन्त सुखी हो जाता है; नहीं तो वैसे ही विश्व में भटकता है।

(5) मेरे विचार से अभी आना बने तो ठीक, नहीं तो दशलक्षणपर्व में आशा, स्वप्निल सहित आना - ठीक रहेगा।

(6) कार्य सरल है, सहज है, अपनी मूर्खता से (अजीवतत्त्व अपने को मानने के कारण से) व्यर्थ में पागल हो रहा है।

(7) सब जैनदर्शन का सार ही इतना है — तू भगवान है; अजीवतत्त्व नहीं है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

मिथ्यात्व व रागादि में नित्य संसरण करनेरूप भावसंसार से प्राणी को उठाकर जो निर्विकार शुद्ध चैतन्य में धारण कर दे, वह **धर्म** है।

- ***आचार्य कुन्दकुन्द***

दिनाँक 16-1-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु,

जय-जिनेन्द्र!

(1) जिनके साथ सम्बन्ध नहीं है — ऐसे पवन आदि अजीवतत्त्व से सम्बन्ध मान रहा है; अत: दु:खी है।

(2) जिनके साथ सम्बन्ध है — ऐसे ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुण उन्हें अपने माने तो चारों गतियों का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति हो।

(3) मोहे सुन-सुन आवे हाँसी, पानी में मीन प्यासी!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 8-4-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निलजी,

मुमुक्षु मण्डल अलीगढ़

जय-जिनेन्द्र!

(1) आज सारा विश्व एकमात्र अजीवतत्त्व को ही अपना मानने के कारण चौबीस घण्टे मोह-राग -द्वेष से दु:खी हो रहा है।

(2) विश्व के दु:ख मिट जावे — क्या उसका कोई उपाय है ?

(3) है; अजीवतत्त्व को अपना न मानेगा; उसी समय निज जीवतत्त्व पर दृष्टि आ जावेगी - मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर क्रम से मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

(4) यह कार्य आसान है, सहजरूप है। — याद रहे इसके अलावा दूसरा उपाय नहीं है। सावधान!!

(5) क्या मात्र अजीवतत्त्व को निज मानने से ही इतना झगड़ा है ? हाँ - भाई! - विचार कर। अन्त में :—

तू जीवतत्त्व है - अजीवतत्त्व नहीं है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

बिजौलियाँ

दिनाँक 18-1-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनकुमारजी, आशाजी व स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) आप मानो या न मानो, मुझे तो लिखने का भाव आ जाता है। आप रोटी खाने के बाद 2 घण्टे सुबह 1 घण्टा शाम को बिल्कुल आराम करें - पढ़ना नहीं, लाईट बन्द की, आराम करो, ठीक रहेगा।

(2) आपको तो मोक्षमार्गप्रकाशक 17, 20, 38, 46, 52 पृष्ठ; उभयाभासी के 10 प्रश्नोत्तर तथा पृष्ठ 77 से 82 तक देखना है। आपको सब बातें कहनी आ गयी हैं, शान्ति से विचार करो ठीक रहेगा।

(3) जब भी चलना हो, मथुरा से फ्रन्टियर मेल से ही चलना है। वह 10 बजे चलता है, पौने तीन बजे कोटा आ जाता है। वहाँ पर सूचना मिलने पर सब इन्तजाम हो जावेगा तथा इधर से वापिसी का भी यही टाईम है फ्रन्टियर का, सो जानना।

(4) विश्व में आपको (सभी को) हमेशा रहना है। अपने को समझा तो सुखी होकर रहना पड़ेगा, नहीं तो दु:खी होकर रहना पड़ेगा — विश्व में कायम रहकर बदलना प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है।

(5) यहाँ पर श्री छगनलालजी आदि मुझे अपने बच्चे से भी ज्यादा प्यार से रख रहे हैं, तत्त्व अभ्यास ठीक चल रहा है, सारा यहाँ का मुमुक्षु समाज आपको याद कर रहा है।

(6) शरीर में कोई बीमारी आती है, वह बतलाती है भाई! यहाँ से जाना है, अपने आपको समझो, न समझो तो पुरानी जगह है ही - तुम तो होशियार हो, हमारेवाला दूसरे भाग का तथा तीसरे भाग का 177 पृष्ठ से विश्व से लेकर आखिर तक देखो, अच्छा, रहेगा।

(7) विश्व का रोकड़ा-चोपड़ा साफ है, किसी का करा धरा होता ही नहीं हैं।

(8) श्री छगनलालजी आदि का जय-जिनेन्द्र!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

वस्तु का स्वभाव धर्म है; जैसे जीव का स्वभाव दर्शन-ज्ञानस्वरूप चैतन्यता है। दश प्रकार के क्षमादिभाव भी धर्म हैं। रत्नत्रय, अर्थात् सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्ररूप भी धर्म है और जीवों की रक्षा करना भी धर्म है।

– ***स्वामी कार्तिकेय***

दिनाँक 21-4-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी

जय-जिनेन्द्र!

(1) समयसारशास्त्र में से कलश, चार - तथा प्रवचनरत्नाकर, भाग एक में से इस कलश पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन बारम्बार पढ़ो।

(2) हमारे भाग में से चौथे भाग में 18 पृष्ठ से 66 तक बारम्बार पढ़ें — ऐसी मेरी भावना है। इसके अलावा दूसरा उपाय नहीं है। यह आपको मन्त्र भेजा जा रहा है।

(3) आशा, स्वप्निल को भी याद कराओ।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 10-4-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) तुम तो जीवतत्त्व हो - निश्चय से निज आत्मा, पवन आदि परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न, स्वयं-सिद्ध वस्तु हो।

(2) शरीर को अपना मानने के ही कारण दु:खी है; परद्रव्यों को अपनेरूप परिणमाना चाहता है, सो होता नहीं।

(3) मेरी प्रार्थना है यदि आराम से रहना चाहो, बाहर जाने का बिल्कुल त्याग करो-अपने घर पर ही 24 घण्टे का प्रोग्राम बनाकर चलो, अति उत्तम रहेगा। कहीं भी बाहर कुछ नहीं है। यह बात आपके ध्यान में भी हैं।

(4) मेरी तो 24 घण्टे भावना है सब जीव सुखी हों; परन्तु वे जिनेन्द्रभगवान की आज्ञा जो पारमेश्वरी व्यवस्था है, उसे माने तो सुखी हो जावे।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

(5) विश्व में जिस द्रव्य की पर्याय, जिस विधि से होती है, वही होगी; उसमें इन्द्र-जिनेन्द्र हेर-फेर नहीं कर सकते हैं।

(6) आपको जैनधर्म में विशेष रुचि है, वह सराहनीय है। मेरी भावना है, वह फलीभूत हो। कब होगी? जब तुम अपने को पर से भिन्न मानोगे, तभी।

(7) व्याप्य-व्यापक, एक द्रव्य में ही है।

(8) मैं भगवान हूँ, अजीवतत्त्व नहीं — इतनी बात है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 24-5-1995

गुरु की आज्ञा का पालन एक समय भी नहीं किया, परन्तु अपनी प्रवृत्ति के अनुसार गुरु की आज्ञा का पालन अनन्त बार किया; इसलिए यह खाली रहा।

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) आपकी धर्म की रुचि जागृत हुई - उसे प्रेम से समझकर, अपने अन्दर उतारो-ठीक रहेगा।

(2) आशा, स्वप्निल को भी प्रेम से समझाओ — 'सुख-दु:ख दाता कोई न आन'। स्वयं पर की मान्यता से ही पागल बना फिरता है, पर के कारण कोई दु:खी है ही नहीं; मात्र अपनी खोटी मान्यता से ही दु:खी है, उसके अभाव का उपाय स्वयं जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व नहीं है।

(3) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रन्थ आया है, आपको भिजवाना है, किसी आते-जाते के हाथ भिजवाऊँगा। ग्रन्थ की 200 प्रति मँगाई हैं, आनेवाली हैं।

(4) पर, यह 'मैं' इस मान्यता से ही पागल है। कैसे छूटे? पर से भिन्न यह 'मैं' — ऐसा जाने तो।

जिस प्रकार वृक्ष का मूल उसकी जड़ है; जड़ के बिना वृक्ष की उत्पत्ति, वृद्धि और पूर्णता सम्भव नहीं है; उसी तरह सम्यग्दर्शनरूपी जड़ के बिना, धर्म की उत्पत्ति, वृद्धि और पूर्णता सम्भव नहीं है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

(5) तब आप अपने को ठीक समझें, आशा, स्वप्निल सहित पधारें — सहर्ष स्वागत है।

(6) आपको इतना कहना आ गया है, दूसरे की आवश्यकता नहीं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 18-8-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशा, स्वप्निल

जय-जिनेन्द्र!

(1) आपने 550 जगह, एक-एक जिनागमसार भेजकर बड़ा भारी हर्ष लूटा है, इसमें खर्चा भी किया प्रेम से, धन्यवाद। मेरी भावना — आप जिनागमसार के अनुसार चलकर मोक्षमार्ग प्राप्त करें।

(2) यह कार्य आसान है, निज आत्मा का सर्व परवस्तुओं से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — इतनी सी बात है।

(3) धर्म आसान है, यह जिनागमसार के अनुसार मानता नहीं है। लौकिक प्रार्थना है - आप सुबह नाश्ता करने के बाद; फिर रोटी खाने के बाद तथा शाम को रोटी खाने के बाद पूर्णरूप से आराम करें तो अच्छा रहेगा, **इतनी देर टेलीफोन ना आवे तो बेहतर है।**

(4) सारा विश्व का कार्य व्यवस्थित है, फिर चिन्ता क्या है? शरीर पवन-रुपया-पैसा, फैक्टरी, धर्मपत्नी, बच्चों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, इसे लगता है — 'ऐसा ही है' परन्तु फिर भी पागल बना फिरता है।

(5) सानु का पता देहली का लिखना - तथा जिनागमसार भेज देना।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

जैसे जेल में पड़ा हुआ व्यक्ति, बन्ध के कारणों को सुनकर डर जाता है और हताश हो जाता है, परन्तु यदि मुक्ति का उपाय बतलाया जाता है तो उसे आश्वासन मिलता है और वह आशान्वित हो, बन्धनमुक्ति का प्रयास करता है। उसी प्रकार अनादि कर्मबन्धनबद्ध प्राणी, प्रथम ही बन्ध के कारणों को सुनकर डर न जाये और मोक्ष के कारणों को सुनकर आश्वासन को प्राप्त हो, इस उद्देश्य से मोक्षमार्ग का निर्देश सर्व प्रथम किया है।

– आचार्य अकलंकदेव

देहरादून

दिनाँक 18-8-1995

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निलजी

आदि मुमुक्षु समाज

जय-जिनेन्द्र!

(1) रूपी पदार्थ जो दिखते हैं, आत्मा का इनसे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। जिनसे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, उन्हें अपना मानकर इष्ट-अनिष्ट कल्पना करके जीवन को बरवाद कर रहा है। जिस समय यह जीव, कहीं भी पड़ा हो – यह निर्णय करेगा कि मुझ आत्मा से परपदार्थ का सर्वदा सम्बन्ध नहीं है, मोक्षमार्ग में प्रवेश हो जावेगा।

(2) तू अरूपी है, असंख्यात प्रदेशी एक आकारवाला है; शरीर रूपी एक-प्रदेशी अनन्त आकार वाला है।

(3) सावधान! सावधान!! मनुष्य जन्म सुखी होने को मिला है। सुख अरूपी, स्वयं अरूपी, गुण अरूपी हैं — व्यर्थ में रूपी पदार्थों में कल्पना करके भटक रहा है। आप तो होशियार हो।

(4) तुम जीवतत्त्व हो; अजीवतत्त्व नहीं हो।

(5) कर्ता-कर्म एक द्रव्य में — ऐसा मानो, बेड़ा पार है।

(6) चारों तरफ मिथ्यात्व की दृढ़ता बढ़ रही है, अपने को अलग रहना ही श्रेयस्कर है।

(7) बीनाजी ने यहाँ पर शाम को 5 से 6 क्लास अपने घर पर की है, अति उत्तम चल रही है। समय हो, उचित समझो तो 1 महीना के लिये आशा, स्वप्निल सहित आवों।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 30-3-1996

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी

जय-जिनेन्द्र!

(1) शरीर की किसी भी प्रकार की बीमारी का, आत्मा से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — कहा है कि वास्तव में निज आत्मा का शरीरादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; ज्ञान-दर्शनादि गुणों से परिपूर्ण अभेद स्वयं सिद्ध वस्तु है — ऐसा जानो।

(2) वर्तमान नाटक बड़ा भारी है-यदि नाटक का मर्म दृष्टि में आ जावे तो यह हमेशा के लिये सुखी हो जावे।

(3) मेरी भावना है — सारा विश्व सुखी हो, परन्तु सारे विश्व में से जब कोई भी जीव यह मानेगा-'मैं जीवतत्त्व हूँ, अजीवतत्त्व नहीं हूँ', तभी जीवन सफल कहलायेगा।

(4) आप तो भगवान आत्मा हो, सारा विश्व ज्ञेय — इतना विचार रखना; आप शरीर की अपेक्षा भी सुखी रहोगे, क्योंकि जो मोक्ष के मार्ग में लगता है, सांसारिक सुख भी उसी के लिय रिजर्व हैं।

(5) मुझे क्षमा करना, मैं ना आ सका।

(6) क्यों ना आ सका? — वह मजबूरी मैं ही जानता हूँ,कोई बहाना नहीं है।

(7) छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहा है। उससे तुम सर्वथा भिन्न हो, इतना मानो-जानो।

(8) जो केवली के ज्ञान में आया है, वह ही हो चुका है, वही हो रहा है; उसमें इन्द्र, अहमिन्द्र जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकते — ऐसा तुम जानते हो, मानते हो फिर चिन्ता क्या?

(9) अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, हो रही हैं, होती रहेंगी।

(10) वास्तव में प्रत्येक आत्मा, सिद्ध के समान ही है परन्तु पर्याय में अजीवतत्त्व को अपना मानने से ही दु:खी है। तुम जीवतत्त्व हो; अजीवतत्त्व नहीं हो।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

बिजौलियाँ

दिनाँक 14-7-1986

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु

जय-जिनेन्द्र!

(1) देहरादून आने से मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारी बुद्धि अच्छी है।

(2) मेरा अन्तिम आदेश है कि आप इस पत्र को पाते ही आज से यह काम प्रात:काल उठते ही तथा शाम को सोते हुए अवश्य ही करेंगे —

सातवाँ भाग में से पृष्ठ 91 में 92 तक जयमाला –

'आत्मदेव ही देव है, महादेव बलवान' इसको पढ़ना है। तथा सात-आठ पृष्ठ का **हित करने का उपाय** जो आपके पास है, उसे पढ़ना है, विचारना है।

शायद 8 प्रश्न का आपके पास नहीं हो तो यह इसमें रख भी दिया है, सो जानना।

यह मन्त्र, जीवन में उतारने का है, सो जानना।

यदि समय हो तो जो प्रवेशरत्नमाला के भाग हैं, उन्हें अध्ययन करना। यदि समय ना हो जो बताया है, इसे मत भूलना।

आप भी यह काम करो, साथ ही आशा व बच्चे को भी याद कराओ, अति उत्तम रहेगा।

कोई प्रश्नोत्तर हो लिखना-

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

हे जीव! मैं अकिंचन हूँ अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसी सम्यक् भावनापूर्वक तू निरन्तर रह क्योंकि इसी भावना के सतत चिंतवन से तू त्रैलोक्य का स्वामी होगा। यह बात मात्र योगीश्वर ही जानते हैं। उन योगीश्वरों को गम्य ऐसे परमात्मतत्त्व का रहस्य मैंने तुझसे संक्षेप में कहा।

– **गुणभद्राचार्य**

दिनाँक 23-1-1997

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निलजी आदि

मुमुक्षु समाज

जय-जिनेन्द्र!

(1) दो, (2) चौबीसीपुराण तथा अहिंसा के पथ पर (जो आपसे लेकर, दूसरे को दे दी थी), भेज दी है।

(2) वर्तमान में सर्व अवसर आ चुका है, कहने में कुछ नहीं बाकी रहा। आत्मसन्मुख परिणाम —यह आसान है —सहजरूप है। इसके लिये मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 पर अनादि-निधनवाला महामन्त्र है, तथा समयसार में तीसरी गाथा है — सो जानना। यह सम्यग्दर्शन के लिए-भव का अभाव करने के लिये, रामबाण औषधि है।

(3) मैं तीन महीने रहा, आपको मेरी वजह से कुछ परेशानी हुई हो तो क्षमा करना, क्योंकि मैं तो बच्चा हूँ; जो बात हो, वैसी कह देता हूँ। आपने तीन महीने जो मेरी सेवा की, मैं उसका बड़ा भारी आभारी हूँ तथा मेरी भावना है, आप सब मोक्षमार्ग में आरूढ़ होकर मोक्षपथपथिक-प्रदर्शक बनें। जरा भी देर होना अच्छा नहीं है। आप अनादि-अनन्त परमात्मा हैं, रहे हो, रहोगे, परन्तु अपने को पवनादि मानकर व्यर्थ पागल बने फिरते हो।

(4) मैं स्वाध्याय भवन में ही ठहरूँगा, सो जानना। मेरा मन स्वाध्याय भवन में ही लगता है। कोई प्रश्नोत्तर हो तो लिखना।

सावधान-सावधान —यह अवसर मत खो देना। एक समय मनुष्य जन्म का, जितनी सम्पत्ति विश्व है, उससे ज्यादा मूल्यवान है। केवल दृष्टि ही बदलती है। तू परमात्मा है, पवनादि शरीर नहीं है। तथा मेरे विचार से मोक्षमार्गप्रकाशक, 248 पृष्ठ से 256 तथा अर्थात्, 10 प्रश्नोत्तर निश्चय-व्यवहार के, हफ्ते में एक बार विचार कर लेना तथा नौवाँ अधिकार 316 से 320 तो बराबर देखना।

(5) बुलन्दशहर में शीतलप्रसादजी तथा डॉ. अरूण व उसकी घरवाली से, जब जाओ अवश्य ही मिलना, उनकी बुद्धि अच्छी है। सानू

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

(स्वप्निल) को अपना जो नक्शा आपने सिखाया है, रोजाना बुलवाना — सबको जय-जिनेन्द्र! हो सके तो सन्तोषबाबू को सम्बोधना है, मेरी भावना है।

(6) यहाँ पर दो अलमारी आपके आदेश के अनुसार अभयजी ने मँगाली है, वह बहुत ठीक है। मैं आजकल में ऊपर जिनागमसार रखवा दूँगा।

(7) 22-1-1997 से प्रवचन चालू हो गया है, 40 मिनट ही कर सकता हूँ। यहाँ पर आकर मुझे प्रसन्नता हुई। विश्व के सम्पूर्ण प्राणी भले हैं परन्तु हम उन्हें अपने अनुसार परिणमन करवाना चाहते हैं तो परेशानी होती है।

(8) यहाँ पर सर्दी-बुलन्दशहर से बहुत कम है, अलीगढ़ से भी कम है, मुझे ऐसा लगा। सारा मुमुक्षु समाज आपको यहाँ याद करता है और भावना भाता है कि सारा विश्व आत्मसन्मुख होवे—

(9) तुम परमात्मा हो; पवनादि नहीं हो — इतनी सी ही बात है।

(10) हो सके तो अपना समय स्वाध्याय का निश्चित करके, सन्तोषजी को अपने पास बैठने का आग्रह करें — मुझे पता नहीं, उसके प्रति राग क्यों आता है।

(11) आप मेरी चिन्ता न करें, मात्र आत्मसन्मुख हो, यह आसान है, सरल है; एक समय का कार्य है, इसके लिये, कर्ता-कर्म एक द्रव्य में लगाना, शरीरादिक से सर्वथा सम्बन्ध नहीं।

तुम परमात्मा हो - शरीरादिक नहीं हो- इतनी सी ही बात है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

जिस जीव को, जिस काल में, जिस विधान से, जन्म-मरण उपलक्षण से सुख-दुःख, रोग-दरिद्रादि का होना सर्वज्ञदेव ने देखा है, वह उसी प्रकार नियम से होना है और वह जिस प्रकार होने योग्य है, उसी प्राणी को, उसी देश में, उसी विधान से, नियम से होता है, उसे इन्द्र या जिनेन्द्र-तीर्थंकरदेव भी रोक नहीं सकते।

- स्वामी कार्तिकेय

देहरादून

दिनाँक 15-4-1997

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी व समस्त मुमुक्ष समाज

जय-जिनेन्द्र!

(1) धर्म का सम्बन्ध, मात्र आत्मा से ही है; किन्हीं भी परद्रव्यों से सर्वथा नहीं है। एक तरफ निज आत्मा, दूसरी तरफ विश्व के पदार्थों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। यह अज्ञानी, व्यर्थ में सम्बन्ध मानकर चारों गतियों में घूमता है - जिस समय यह मानेगा 'मैं परमात्मा हूँ; मुझ परमात्मा का दूसरे से सर्वथा सुख सम्बन्ध नहीं है', उसी समय सुखी हो जावेगा, जन्म-मरण का अभाव हो जावेगा।

(2) आपने जिनागमसार में सब प्रयोजनभूत बातों का वर्णन किया है, अति उत्तम कार्य किया है, उसमें से पाँच पृष्ठ पर अनादिनिधन वाले आदि मन्त्र है, उन्हें स्मरण रहना चाहिए।

खास बात —

a) कर्ता-कर्म एक द्रव्य में ही होता है — ऐसा मानते ही अपना परमात्मा दृष्टि में आवेगा।

b) सात-तत्त्वों में तू जीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, इतना यथार्थ मानते ही मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा।

c) समय थोड़ा है, अपने कार्य को कर लेना चाहिए।

d) धर्म के लिये आप तन-मन-धन से सहर्ष तैयार रहते हैं, जरूरतमन्द का ध्यान रखते हैं- ऐसे समय में आप जैसे का दिखना भी दुर्लभ है, परन्तु इसमें अटक मत जाना।

e) सर्व जीव, धर्म प्राप्त करे - ऐसा तीव्रराग है, जो वास्तव में जहर है परन्तु इस समय धर्म की बात सुनने का किसी को अवसर ही नहीं दिखता।

f) केवली के केवलज्ञान को मानो, वस्तु स्वरूप मानो, कर्ता-कर्म एक द्रव्य में मानों बेड़ा पार हो जावेगा।

g) आज विश्व में जितने मुमुक्षु मण्डल हैं, उनमें मेरे विचार से देहरादून का उत्तम है, परन्तु देहरादूनवालों का ही नहीं है; मण्डल आपको प्यार की

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

दृष्टि से देखता है। मेरी भावना, जब समय मिले और आप हमको इस योग्य समझते हो तो आशा, स्वप्निल सहित बेटी बीना के यहाँ पधारना, वहाँ पर मण्डल से जो भी सेवा होगी, तैयार रहेगा।

श्री समयसारजी, प्रवचनसारजी, नियमसारजी, मोक्षमार्गप्रकाशक, यह जिनवाणी है – जिसके सुनते ही भव का अभाव हो जाता है। – वैसे तो चारों अनुयोग ही जिनवाणी है, सब में वीतरागता की ही बात है।

अपनी बात

(1) मेरा मन, जहाँ पर समझनेवाले जिज्ञासु हों, वहीं पर लगता है। यह मेरे में दोष है।

(2) आप व आशा, तन–मन–धन से चाहते हैं पिताजी यहाँ ही रहे; मैं भाव से तो, जहाँ धर्म की बात चलती है – रहता ही हूँ।

(3) पिता के नाते जो आपने मेरा आदर किया, आज विश्व में ऐसा कहीं देखने में नहीं आता है। आप धन्य हैं।

(4) मेरी अन्तिम भावना है कि आप सिद्धों से बड़े परमात्मा हो, उसका आश्रय लें तो पर्याय में सिद्धदशा प्रगट हो जावेगी। यह कार्य आसान है, सहज है। सिद्ध तो पर्याय है, जिसमें से सिद्धदशा आनी है– वह परमात्मा तुम हो। यदि समय खो दिया तो ठीक नहीं है।

(5) आप इस अवस्था में जिस प्रकार चल रहे हैं, यह भी एक अचम्भा है। सबका ध्यान रखते हैं– परन्तु निज आत्मा का ध्यान स्वपर (अपने आप पर) नहीं है। जिस समय पवन मैं नहीं हूँ, उसी समय परमात्मा दृष्टि में आ जावेगा।

(6) अन्त में मेरे से कहने आदि में कुछ गलती हो तो क्षमा करना —

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

हे शिष्य! जो कुछ पदार्थ, सूर्य के उदय होने पर देखे थे, वे सूर्य के अस्त होने के समय नहीं देखे जाते, नष्ट हो जाते हैं। इस कारण तू धर्म का पालन कर, धन और यौवन अवस्था में क्या तृष्णा कर रहा है!

– आचार्य योगीन्दुदेव

दिनाँक 11-10-1997

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनकुमारजी, आशाजी व स्वप्निल आदि मुमुक्षु समाज को

जय-जिनेन्द्र!

(1) जो अनादि से तीर्थङ्करों ने अपनी दिव्यध्वनि में विश्व को देशना दी, उसी बात को विदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवानादि भगवान दिव्य देशना दे रहे हैं। उसी बात को कुन्दकुन्द भगवान, जिनका नाम गौतमगणधर के बाद ही आता है, वे विदेहक्षेत्र गये, आठ दिन तक सीमन्धर भगवान के मुख से दिव्य देशना सुनी; उसे वहाँ से भारत में वापिस आने पर श्री समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, अष्टपाहुड़ में उस बात को भरी और उसी का सन्देश विश्व को दिया। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने सीधे सादे शब्दों में थोड़े में मोक्षमार्गप्रकाशक से भरा है। **उसी बात को परमपूज्य श्री कानजीस्वामी ने 45 वर्षों में विश्व को सोनगढ़ के माध्यम से परोसी है। उन्होंने अपने पास से कुछ नहीं कहा है, मात्र जो जिनागम में कहा है, उसी बात को विश्व के कल्याण हेतु सोनगढ़ से विश्व को दी है, ताकि सारा विश्व इस बात को समझे तो सुखी होवे।**

(2) आपको कुछ लेना-देना नहीं, परन्तु यह भाव आया कि वही बात अलीगढ़, बुलन्दशहर, देहरादून आदि में भी प्रसारित हो। वहाँ से जो श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थयात्रा संघ आ रहा है, उसके स्वागत की तैयारी अनादि से ज्ञानियों की सन्देश की तैयारी है। उसकी जानकारी विश्व को होवे- मैं इसके लिए आपकी भावना के लिए तह दिल से स्वागत करता हूँ - और भावना भाता हूँ, आप अपने कार्य में पूर्ण सफल हों।

(3) आपने जो यात्रा संघ का बेड़ा उठाया है, वह तो पूर्णरूप से पूर्ण होगा ही, परन्तु **मेरी दिली भावना है कि आनेवाले यात्रा संघ में उनका स्वागत करने-करानेवाले, सब मोक्षमार्ग में आरूढ़ हो, मोक्ष को प्राप्त करें।**

(4) अब आप से प्रार्थना है — बहुत हो गई - कितनी देर रहना है - शरीर की अपेक्षा से; वैसे तो आप अनादि-अनन्त ही हो, जो अनादि-अनन्त स्वयं भगवान हो - उसको समझने के लिये मात्र पवनकुमार आदि नहीं हो - इतना ही मानना है। इतना मानकर, मोक्षमार्ग प्रगट करो। आपकी भावना उत्तम है- मैं उसका तहदिल से समर्थन करता हूँ।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

(5) पूज्य गुरुदेव ने समयसारादिक के माध्यम से जो भव्य जीवों को सुखी होने का सन्देश दिया, वही ग्रन्थ आपको भी प्रिय हैं। अत: उन पर चलकर आत्मसन्मुख होवो, — ऐसा मुझे भाव आया है। अब रात को 2 बजे हैं, वे भाव मैंने लिखकर यहाँ पर किसी से भी चर्चा न करके, आपको लिख भेजे हैं। तथा 11-10-97 को प्रात: लिफाफा डाकखाने के हवाले कर दिया है।

(6) आप जो काम करते हो, उससे कामयाबी होती ही है, होकर भी रहेगी क्योंकि उसमें कुछ लौकिक लाभ की भावना नहीं है। अत: आप आत्मसन्मुख होवो, इस भावना के साथ मैं पत्र को बन्द करता हूँ।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

देहरादून

दिनाँक 13-10-1997

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी,

जय-जिनेन्द्र!

(1) जिनागमसार, जब चाहे, यहाँ भिजवा दें।

(2) स्वानुभूतिदर्शन, सोनगढ़ से 180 ही आई है। आपने हजार कहा था-

(3) आपके पास स्वानुभूतिदर्शन ग्रन्थ हो, आप चाहे तो भेज सकते हैं।

(4) वचनामृत-प्रवचन का दूसरा भाग नहीं आया है, यदि 100 आ जावें तो अच्छा है। यहाँ पर आपकी पुस्तकें सुरक्षित रखीं जावेंगी, जब चाहे भेज सकते हो।

(5) धर्म का सम्बन्ध, मात्र आत्मा से ही है, शरीर से भिन्न अपने को माने तो बेड़ा पार हो जावे।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

जीव अकेला मरता है और स्वयं अकेला जन्मता है; अकेले का मरण होता है और अकेला रागरहित होता हुआ सिद्ध होता है।

- आचार्य कुन्दकुन्द

दिनाँक 12-3-1997

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी

जय-जिनेन्द्र!

(1) मोक्षमार्गप्रकाशक के नौवाँ अधिकार का सूक्ष्म रीति से अभ्यास करें तो तुरन्त सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से मोक्ष का पथिक बनें।

(2) यदि नहीं होता है तो वह कहीं अटका हुआ है। कहाँ अटका हुआ है ? इसको जानने के लिये मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवें अधिकार का पृष्ठ 218 से 219 तक पढ़ें — विचारें, शायद अपनी गलती ध्यान में आ जावे।

(3) उसका उपाय मेरे विचार में मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा सूक्ष्मरीति से पढ़ें-पढ़ावें-विचारें तो शायद पार हो जावे।

जय गुरुदेव

यह बात आज रात्रि में चली तथा डायरी में लिखी, आपको लिखने का विकल्प आया — वैसे तो समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि व पूज्य गुरुदेव के प्रवचन प्रसाद, मोक्षमार्ग में प्रवेश करने की कला बतला ही रहे हैं तथा मोक्षमार्गप्रकाशक में उन्हीं आचार्यों के कथन को थोड़े में परोसा है।

आपने जिनागमसार लिखकर बहुत अच्छा कार्य किया - मेरी भावना है कि आप आत्मसन्मुख हों, — उसमें मात्र देरी क्या है ? शरीर को ही अपने का माने हुए हो, जब शरीर को अपना न मानोगे, मोक्ष सामने खड़ा है।

इसके लिये—

(1) व्याप्य-व्यापक, एक द्रव्य में ही होता है; दो द्रव्यों में नहीं - इसका निर्णय;

(2) सात तत्त्वों में तू जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व नहीं है — ऐसा यथार्थ निर्णय;

(3) यह कार्य आसान है, सहजरूप है, तू परमात्मा है — तेरे परमात्मा के अलावा किसी भी परमात्मा आदि अजीवतत्त्व से सम्बन्ध नहीं — इतना निर्णय।

(4) मैंने 4-3-97 को स्वप्निल को भी पत्र लिखा था — यहाँ पर सब ठीक है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 9-8-1998

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निलजी आदि सब मुमुक्षु समाज को

जय-जिनेन्द्र!

(1) आपने जो कार्य किया है, वह मेरा ही है; मेरी भावना है, वह हर तरह से पूर्ण होगा। मैं शरीर की उम्र का तकाजा होने से ना आ सका — क्षमा करना।

(2) यहाँ पर जब वारिस नहीं होती, गर्मी बढ़ जाती हैं, उम्र का तकाजा होने से मुझे परेशानी होती है। कार्य जो होना है, वैसे ही हो रहा है, वैसा ही होगा; उसमें इन्द्र-जिनेन्द्र भी हेर-फेर नहीं कर सकते हैं।

(3) सब कार्य होते हुए स्वाध्याय का ध्यान रखना। अमृत झरना जो आपने आगरा से आया था, वह दिया था, सो सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन है। उसे क्रमबार पढ़ना। श्री समयसारजी की 198 गाथा से 204 तक गाथा तक पढ़ना।

(4) कर्ता-कर्म एक द्रव्य में ही होता है; दो द्रव्यों में मानता है, वह दु:खी रहता है। **आपने पूज्य गुरुदेव का सत्संग किया है - पूज्य गुरुदेव के भक्त को कभी परेशानी नहीं होती है।** कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 321 से 323 तक पढ़ना, विशेष रूप से 323 में सब द्रव्यों की परिणाम सर्वज्ञ के आगम अनुसार जानता है, वह ज्ञानी है, जो नहीं मानता है, अज्ञानी है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

काल अनादि है, संसारी जीव अनादि है, संसारसागर भी अनादि-अनन्त है; मिथ्यादर्शन के कारण मोही होता हुआ जीव, सुख नहीं पाता है; दु:ख ही पाता है।
- आचार्य योगीन्दुदेव

दिनाँक 12-6-1999

आदरणीय आत्मार्थी बन्धु पवनजी, आशाजी, स्वप्निलजी,

मुमुक्षु मण्डल अलीगढ़

जय-जिनेन्द्र!

(1) आप स्वयं भगवान है। ज्ञान के बिना आत्मा रहा ही नहीं। जो ज्ञानपर्याय होती है, वह आती है ज्ञानगुण से; अज्ञानी पर से मान लेता है।

(2) शरीरादि, मात्र ज्ञान का ज्ञेय है, यह व्यर्थ में ही शरीरादि को अपना मानकर दुःख उठा रहा है।

(3) आप अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज है, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी, अनादि-निधन भगवान है — व्यर्थ में मूर्तिक पुद्‌गलों के पिण्ड, ज्ञानादि रहित, एक-एक प्रदेशी, अनन्त आकारों से पागल बना फिरता है।

(4) शरीर को आत्मा ने छुआ भी नहीं है। अमूर्तिक को मूर्तिक छू ही नहीं सकता है — प्रत्येक द्रव्य -अपने गुण-पर्यायों से बाहर न गया है, न जायेगा, न जा सकेगा — ऐसा मानते ही स्वयं भगवान प्रत्यक्ष हो जाता है।

(5) कर्ता-कर्म एक द्रव्य में ही होता है, यह दो द्रव्यों में मानने के कारण वस्तुस्वरूप समझ में नहीं आता है।

(6) सर्व विशुद्धि अधिकार पर परमपूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन पढ़ो तथा आपने प्रवचनरत्नाकर पहला भाग भेजा, यह भी 11 गाथा से शुरु करके 15 तक अपूर्व है — सारा ही अपूर्व है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

हे जीव! यदि चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है तो परभावों को छोड़ दे और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, जिससे मोक्ष के सुख को तू पा सके।
– **आचार्य योगीन्दुदेव**

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 24-10-1968

प्रश्न – सुख की प्राप्ति कैसे हो और सुख क्या है ?

उत्तर – एकमात्र अनादि-अनन्त अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेने से ही सुख की प्राप्ति, सुख की वृद्धि और सुख की पूर्णता होती है; और किसी भी परपदार्थ का आश्रय लेने से, विकारीभावों को आश्रय लेने से और किसी भी पर्याय का आश्रय लेने से, कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है — ऐसा भगवान का स्याद्वाद अनेकान्त कथन है।

आकुलतारहित अवस्था, सुख है; वह सुख अपने त्रिकाली भगवान के आश्रय से ही प्रगट होता है। ऐसा जानकर सुखार्थी को अपना आश्रय लेकर, आकुलतारहित अवस्था प्रगट करना परम कर्तव्य है।

प्रश्न – सुबह से लेकर शाम तक-रोटी खाना, पाँच इन्द्रियों के विषयों से क्या सुख प्राप्त नहीं होगा ?

उत्तर – कभी भी नहीं। जैसे, कोई कहे कि हमारे गाँव में महीन-महीन (बारीक-बारीक) रेत निकलती है, मैं उसमें से तेल निकालने के लिए मशीनों का आर्डर अमेरिका दूँ या इग्लैण्ड ? यह प्रश्न ऐसा ही है। जबकि रेत से तेल निकलता ही नहीं, तब मशीनों के आर्डर का प्रश्न व्यर्थ है। उसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख का अंश भी नहीं, तब उससे सुख की प्राप्ति का प्रश्न व्यर्थ है।

अनादि काल से सब जीव, सुख चाहते हैं; दुःख नहीं चाहते हैं लेकिन सुख क्या है ? दुःख क्या है ? — उसका पता न होने से चारों गतियों में घूमते हुए निगोद को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न – अच्छा, परवस्तु से तो सुख नहीं, परन्तु शुभभावों से तो सुख की प्राप्ति होती है न ?

उत्तर – तीन काल, तीन लोक में कभी भी, किसी भी समय, किसी भी जीव को दया, दान, पूजादि, अणुव्रतादि, महाव्रतादि के भावों से सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि सुख-अवस्था, अविकारी है और शुभभाव, विकारी है। विकारी से, अविकारी भावों की प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती है।

प्रश्न – धर्म का सम्बन्ध किससे है और कब से शुरु होता है और उसकी पूर्णता कब होती है ?

उत्तर – धर्म का सम्बन्ध शुद्धभाव से ही है; शुभाशुभभावों से कभी भी नहीं; और सम्यग्दर्शन होने पर धर्म की शुरुआत होती है और परिपूर्णता 12वें गुणस्थान में होती है।

प्रश्न – द्रव्यलिङ्गी मुनि को शुक्ललेश्या तक शास्त्रों में होना बताया है, क्या उसे सुख जरा भी नहीं होता?

उत्तर – सुख जरा भी नहीं होता है। वह अनन्त संसार का पात्र है। द्रव्यलिङ्गी मुनि, संसार का नेता है—संसार तत्त्व है। उसे सुख क्या है? इसका पता भी नहीं। क्योंकि उसने शुभभावों को ही सुख माना है। शुभभाव विकारीभाव हैं। वह शुक्ललेश्या होने पर, ग्रैवेयक पर्यन्त जावे तो भी क्या है? कुछ नहीं। वह तो ग्रैवेयक में भी दु:खी ही है। अपने आप को जानने से ही सुख की प्राप्ति होती है। कहा भी है :—

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लैश न पायौ॥

(छहढ़ाला, चौथी ढ़ाल)

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री ॥

दिनाँक 25-10-1968

प्रश्न – सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानी अपने अन्दर पूर्ण स्थिरता क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर – सम्यग्दर्शन होने पर, अपने अन्दर पूर्ण स्थिरता न होने के कारण, ज्ञानी परिपूर्ण सिद्ध नहीं हो पाता क्योंकि प्रत्येक गुण का परिणमन पृथक-पृथक है। सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगट होने पर, बाकी सम्पूर्ण गुणों से अंशरूप से शुद्धि प्रगट हो जाती है।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन होने पर चौथे गुणस्थान में ज्ञानी की क्या दशा होती है?

उत्तर – (1) श्रद्धा में सिद्ध भगवान जैसा बन गया है, क्योंकि उसकी दृष्टि स्वभाव पर ही है। निमित्त, भङ्गभेद, विकारी, अविकारी पर्याय पर नहीं है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

(2) ज्ञान की अपेक्षा जितना सिद्ध भगवान जानते हैं, उतना ही जानता है, मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है।

(3) चारित्र की अपेक्षा जितनी स्थिरता है, वह तो चारित्र है ही/जितनी अस्थिरता है, वह अल्प बन्धरूप है और ज्ञान का ज्ञेय है। अपने अन्दर परिपूर्ण स्थिरता करके, अस्थिरता का अभाव करके, पूर्ण हो ही जाएगा; इसलिए सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञानी, भगवान बन गया है।

प्रश्न – फिर ज्ञानी होने पर संसार के कार्यों में क्यों प्रवर्तता है ?

उत्तर – संसार के कार्यों में अज्ञानियों को दिखता है परन्तु स्त्री-पुत्रादि में तो अज्ञानी भी नहीं प्रवर्तता है। अज्ञानी की मर्यादा भी शुभाशुभ विकारीभावों में प्रवर्तने की है। ज्ञानी तो शुभाशुभभावों को पर जानता है, वे तो बाह्य स्थित भाव हैं। ज्ञानी तो अपनी अभेद आत्मा को ही अपना मानता-जानता है; वह तो केवली के समान ज्ञायक हो गया है।

अहो! चौथे गुणस्थान से ज्ञायक-ज्ञायक — यह बात ज्ञानी ही जानते हैं; अज्ञानी नहीं। ज्ञानियों को अपने अन्दर स्थिरता न होने कारण, रागादि दिखते हैं, वह उसे जानते हैं, अपने नहीं मानते हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर चारित्रगुण की पर्याय में दो अंश हो जाते हैं; जितनी स्थिरता है, उसे प्रगट करने योग्य उपादेय जानते हैं; जो अशुद्धि है वह हेय-ज्ञेय है, उसमें उनका प्रेम नहीं हैं। एकमात्र स्वभाव में ही रहने की मात्र भावना है। अज्ञानियों को ज्ञानी, संसार में प्रवर्तता दिखे तो भी ज्ञानी अपने में ही है और अज्ञानी, द्रव्यलिङ्गी मुनि क्यों न हो, वह पर में ही प्रवर्तता है।

ज्ञानी का रहस्य ज्ञानी ही जानते हैं; अज्ञानी नहीं।

कैलाशचन्द्र जैन

शरीर आदि जिनको आत्मा से भिन्न कहा गया है; उनरूप ही अपने को मानता है, वह बहिरात्मा है – ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है कि वह बारम्बार संसार में भ्रमण करता रहता है।

– आचार्य योगीन्दुदेव

दिनाँक 26-10-1968

प्रश्न – मिथ्यादृष्टियों को सच्ची बात, जबकि सब सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं, क्यों समझ में नहीं आती ?

उत्तर – (1) सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का विश्वास नहीं है।

(2) अनादि काल से काम-भोग-बन्ध की महिमा है, रुचि है और उधर ही उनका वीर्य डलता है और अपनी आत्मा की महिमा / रुचि न होने से सच्ची बात समझ में नहीं आती है।

(3) शास्त्रों में कथन अनेक प्रकार से है, वह कथन किस अपेक्षा किया है ? — उसकी समझ न होने से उल्टी बात हृदय में बैठती है; सच्ची बात नहीं बैठती है।

प्रश्न – सच्ची बात हृदय में बैठे, इसके लिए क्या-क्या करना जानना जरुरी है ?

उत्तर – एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान आत्मा को जानना-श्रद्धान और लीनता ही जरुरी है और कुछ भी नहीं।

प्रश्न – त्रिकाली ज्ञायक भगवान आत्मा समझ में आवे — वह क्या है ? उसके लिए हम क्या-क्या जाने तो उसका पता हो जावे — ऐसी प्रयोजनभूत रकम क्या-क्या है ?

उत्तर – छ:द्रव्य, सात तत्त्व, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, हेय-उपादेय-ज्ञेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, त्यागयोग्य मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि का स्वरूप, नाम, लक्षणादि का अभ्यास निरन्तर करना चाहिए। परीक्षा आदि के द्वारा यथार्थ निर्णय जब तक अपना त्रिकाली भगवान आत्मा ध्यान में न आवे, यह कार्य करना चाहिए। ऐसा करने से भगवान आत्मा का पता चलता है, धर्म की शुरुआत होकर, वृद्धि होकर, पूर्णता की प्राप्ति होती है।

ऐसा नियम तो नहीं है। यदि भगवान आत्मा का पता चले तो नियम है। यदि न पता चले तो नियम नहीं है। यथार्थ निर्णय करने पर यथार्थता का पता चलता ही है – ऐसा नियम है।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

यदि आत्मा को आत्मा समझेगा तो निर्वाण को पावेगा; यदि परपदार्थों को आत्मा मानेगा तो तू संसार में भ्रमण करेगा।

-आचार्य योगीन्दुदेव

दिनाँक 13-11-1968

प्रश्न - वस्तुस्थिति क्या है ?

उत्तर - जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म आकाश एक-एक, लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर असंख्यात कालाणु हैं।

एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण में अनादि-अनन्त एक ही समय में एक पर्याय का उत्पाद, पिछली का अभाव और ध्रौव्यपना कायम, अनादि-अनन्त वर्तता है। इसी प्रकार प्रत्येक गुण की पर्याय में ऐसा ही होता है, हो रहा है और होता रहेगा। इसमें जरा भी, कोई तीर्थङ्कर भगवान क्यों ना हों, जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकते — ऐसी वस्तु स्थिति है। ऐसा जानते ही पात्र जीव की दृष्टि अपने भगवान आत्मा पर होती है, तभी इस बात को स्वीकार किया; और अनादिकाल की पर कर्ता-कर्म बुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाता है तथा जैसा वस्तुस्वभाव केवली के ज्ञान में आता है, वैसा ही साधक छद्मस्थ जानता है, मात्र प्रत्यक्ष परोक्ष का ही भेद है; अन्य नहीं।

अहो! एक द्रव्यदृष्टि से सत् उत्पाद दृष्टिगोचर होता है, एक पर्यायदृष्टि से असत् उत्पाद दृष्टिगोचर होता है, प्रमाणदृष्टि से दोनों दृष्टिगोचर होते हैं। जब सब द्रव्यों में ऐसी वस्तु स्थिति की मर्यादा है, तब कौन अपात्र अभव्य होगा, जो इसे न स्वीकारे। अर्थात्, जो इसे स्वीकार करता है, वह निश्चय से भव्य और पात्र हैं, बाकी सब जो वस्तुस्थिति को नहीं स्वीकारते, वह अभव्य और अपात्र हैं।

'जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है'। तब कौन किसका कर्ता? कोई किसी का न कर्ता है, ना भोक्ता है। ऐसा वस्तु स्वरूप को जाननेवाले, स्थिरतावाले, श्रद्धावाले जीवों को यथायोग्य विनय करता हूँ। ऐसा पात्र जीव ही एक ही समय अनादि-अनन्त तीर्थङ्करों, गणधरों, आचार्यों, उपाध्यायों, मुनियों को नमस्कार करता है। ऐसा वस्तु स्वभाव जाननेवाला, मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ होता है। ऐसा वस्तुस्वभाव जाननेवाला जानता है, एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं, एक गुण से दूसरे का सम्बन्ध नहीं है। एक पर्याय का, एक ही गुण की पर्याय से अगली पिछली पर्याय से सम्बन्ध नहीं है, तब कौन किसी का है? अर्थात्, किसी का भी नहीं। मेरी आत्मा अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड भगवान आत्मा है, ऐसी श्रद्धा, स्थिरता करना ही इस वस्तुस्थिति को जानने का फल है।

मिथ्यादृष्टि मात्र अपनी एकत्वबुद्धि से ही संसार में परिभ्रमण करते हैं; अन्य से नहीं, और जितने भी पार होते हैं, एकमात्र स्वभाव की एकाग्रता से ही होते हैं; शुभाशुभभाव तथा कर्म, पर से नहीं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 30-12-1968

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – जीव दु:खी क्यों है ?

उत्तर – अपने आप का पता न होने से और ,एकमात्र परपदार्थ में अपनेपन की मान्यता के ही कारण दु:खी है। किसी स्त्री-पुत्र, धनादि, शरीर में रोगादि के कारण, कर्म के कारण बिल्कुल नहीं; एकमात्र परपदार्थों में तथा शुभाशुभभावों में, यह मेरे लिए लाभकारक, यह नुकसानकारक हैं — इस 'मान्यता' के कारण ही दु:खी है।

प्रश्न – यह दु:ख कैसे मिटे ?

उत्तर – एकमात्र अनादि-अनन्त अनन्त गुणों का भण्डार स्वयं जो मोक्षस्वरूप है, उसका आश्रय लेते ही दु:ख का अभाव हो जाता है। दु:खरहित मेरा आत्मा है — ऐसा अनुभव होने पर, जैसे-जैसे अपनी ओर सन्मुख होता है, वैसे श्रावकपने, मुनिपने, श्रेणीपने, अरहन्तपने, सिद्धपने की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न – क्या शुक्ललेश्या से धर्म नहीं होता ?

उत्तर – शुक्ललेश्या, मन्दकषाय है और धर्म, कषायरहित है; कषाय से धर्म प्राप्ति तीन काल - तीन लोक में भी नहीं हो सकती। जिस भाव से बन्ध हो, वह कभी भी धर्म का कारण नहीं हो सकता है। शुभभाव जहर है, धर्म अमृत है और जहर, अमृत का कारण बने — ऐसा है ही नहीं।

प्रश्न – हमारी समझ में आता नहीं — कैसे धर्म प्राप्त करें ?

उत्तर – धर्म की प्राप्ति, धर्मी (स्वयं) में से ही आती है। कस्तूरी, हिरण के

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

अन्दर है, बाहर ढूढ़ता है। सुख अपने अन्दर है, बाहर ढूँढ़ता है। सम्यग्दर्शन अपने अन्दर है, बाहर दर्शनमोहनीय के क्षयादि हो तब प्राप्त हो, गुरु की कृपा हो, तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो — कैसे मिले? जहाँ वस्तु हो, वहीं मिले; जहाँ ना हो तो कैसे मिले? इसलिए सबसे पहिले अनन्त आत्मा हैं, उसमें स्त्री-पुत्रादि हैं, 24 तीर्थङ्करादि हैं, देव-गुरु-शास्त्र तथा पुद्गलादि और द्रव्य हैं, इनसे तो मेरा कभी भी सम्बन्ध हुआ नहीं, होगा नहीं, और था भी नहीं। अपने आप का पता ना होने से अपने में जो शुभाशुभभाव हैं, दया, दान, पूजादि - यह सब पर हैं क्योंकि यह पर के आश्रय से होते हैं — ऐसा जानकर, बाकी जो अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड स्वयं मोक्षस्वरूप है, उसका एक क्षण भी आश्रय ले तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न - मिथ्यादृष्टि क्या जाने, क्या माने, तो अवश्य धर्म की प्राप्ति हो?

उत्तर - (1) संसार में अनन्तानन्त जीव हैं, जीव से अनन्तानन्त पुद्गल हैं, धर्म-अधर्म आकाश एक-एक है, असंख्य कालाणु लोकाकाश प्रमाण हैं — इनसे तो मेरा किसी भी अपेक्षा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; इनसे स्वप्न में भी सम्बन्ध मानना, महान निगोद का कारण है।

(2) दया, दान, पूजादि; हिंसा, झूठ, चोरी आदि के जितने भी शुभाशुभभाव हैं, यह मेरी पर्याय में, मैंने अपना आश्रय नहीं लिया है, इस कारण हैं और इनमें एकत्वबुद्धि, यह संसार है, यह एक समय का है; मैं स्वयं अनादि-अनन्त हूँ। यदि एक समय भी स्वयं अनादि अनन्त का आश्रय लूँ तो संसार समाप्त हो सकता है — ऐसा जानकर, स्वभाव का आश्रय ले तो इसे पता लगे। — अरे! मैंने अनन्त काल मूर्खता में ही खोया-इसके अलावा और उपाय नहीं।

कैलाशचन्द्र जैन

पुद्गलादि सर्व पाँचों द्रव्यों को अचेतन या जड़ जानो; एक अकेला जीव ही सचेतन है व सारभूत परम पदार्थ है; जिस जीवतत्त्व को अनुभव करके परम मुनि, शीघ्र ही संसार से पार हो जाते हैं।

-आचार्य योगीन्दुदेव

अहमदाबाद

दिनाँक 10-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – संसार से पार होने के लिए किसका आश्रय ले ?

उत्तर – एकमात्र अपनी आत्मा का; और किसी का स्वप्न में भी नहीं। इसका आश्रय लेते ही जीवन में शान्ति आ जावेगी, अपूर्व आनन्द प्रगट होगा, जो वचनातीत है।

प्रश्न – यह जीव अनादि से दु:खी क्यों है ?

उत्तर – अपनी आत्मा का निरादर करने से ही दु:खी है। यह जीव, अनादि से एक-एक समय अपनी आत्मा का निरादर कर रहा है और एक समय भी अपनी ओर दृष्टि करे तो निरादरपना दूर हो जावे।

प्रश्न – प्रवचनसार, अलिङ्गग्रहण में 20 बोल आये हैं, इसमें पहला बोल क्या है ? उसका स्पष्टीकरण करिये ?

उत्तर – आत्मा का इन्द्रियों द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय महापदार्थ है।

पाँच इन्द्रिय, छठवाँ मन —यह सब पुद्गल जड़ हैं, इससे ज्ञान का सम्बन्ध ही नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र, शुभाशुभभाव, ज्ञानावरणादि कर्म आदि से भी आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है, यह सब इन्द्रियों में ही आ जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा का ज्ञान, इन्द्रिय-इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों से तथा खण्ड-खण्ड क्षयोपशमज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है।

प्रश्न – क्या 11 अङ्ग 9 पूर्व के जानने से आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है और शास्त्रों के पढ़ने से, द्रव्यलिङ्गी जैसी शुक्ललेश्या होने से भी, क्या आत्मा के ज्ञान में मदद नहीं मिल सकती है ?

उत्तर – वास्तव में आत्मा का ज्ञान-सुख प्रगट करने के लिए, एकमात्र तू आत्मा है, तेरा कार्य ज्ञान है —ऐसा निर्णय करते ही आत्मा का ज्ञान-आनन्द प्रगट हो जाता है। आत्मा का ज्ञान और आनन्द प्रगट करने के लिए ज्यादा क्षयोपशम और संयोग की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है। विचारो :—

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

हे योगी! योगियों ने कहा है जो कोई जीव तथा अजीव का भेद जानता है, उसी ने मोक्ष का मार्ग जाना है।

-आचार्य योगीन्दुदेव

एक नवग्रैवेयक का देव है; दूसरा स्वयंभूरमण समुद्र का मगरमच्छ है; तीसरा सातवें नरक का नारकी है; चौथा राजा है; ये चारों जीव, अनादि के मिथ्यादृष्टि है। इन सबको मोटे दृष्टान्त के तौर पर - आठ बजकर एक मिनट पर सम्यग्दर्शन होना है तो पूर्व में अनिवृतिकरण, जो करणलब्धि का भेद है, यह शुभभाव है; जिसका अभाव होकर नियम से सम्यग्दर्शन होता है — तो देखो! नारकी को तीन ज्ञान का उघाड़ और संयोग महान प्रतिकूल; देव को भी तीन ज्ञान का उखाड़ और संयोग सब अनुकूल; मगरमच्छ और राजा को अल्प मति-श्रुतज्ञान का उघाड़ और संयोग देव, नारकी से विरुद्ध है।

विचारो! सम्यग्दर्शन होने से पूर्व शुभभाव, जो कि चारों गतियों के जीवों के एक-सा होता है तो वह क्षयोपशम और संयोग ने क्या किया? कुछ भी नहीं; इसलिए अपना कल्याण करने के लिए इन्द्रियों, इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों, क्षयोपशम रूप खण्ड-खण्ड ज्ञान से दृष्टि हटाओ; एकमात्र तू आत्मा है, तेरा इनसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है — ऐसा जानकर, अपने त्रिकाली भगवान की ओर दृष्टि करे तो जीवन में तत्काल शान्ति आती है।

इसी प्रकार चार भावलिङ्गी मुनि हैं। किसी को मति-श्रुतज्ञान का अल्प उघाड़ है; किसी को अवधि, किसी को मनःपर्ययज्ञान है; देखो! कोई आचार्य, उपाध्याय है। ज्ञान का उघाड़ अलग-अलग, संयोगरूप पदवी अलग-अलग है लेकिन अनिवृत्तिकरण नौंवे गुणस्थान में चारों भावलिङ्गी मुनियों को शुद्धि एक प्रकार की होती है; जरा हेर-फेर नहीं। आत्मा का ज्ञान करने के लिए इन्द्रियों, संयोग, सयोगीभाव, ज्यादा क्षयोपशमज्ञान की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है।

इसलिए पहले बोल-आत्मा का ज्ञान, इन्द्रियों से नहीं होता है। लिङ्ग = चिह्न इन्द्रियों से, अ = नहीं; ग्रहण = ज्ञान होता है। एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर दृष्टि करे तो ही आत्मा का ज्ञान होता है। शुभाशुभभाव भी संयोग से उत्पन्न होते हैं; इसलिए इनका संयोगसिद्धसम्बन्ध है; इनसे जीव दुःखी होता है, संसार का पात्र होता है। संसार किन्हीं परवस्तुओं के कारण नहीं है; मात्र अपनी मूर्खता / एकत्वबुद्धि के ही कारण है; इसलिए तादात्म्यसिद्ध -सम्बन्ध अपने अनन्त गुणों के साथ है — ऐसा जानकर, अभेद पिण्ड ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय लेकर, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करना, यह पहला बोल समझ में आना कहा जावेगा, क्योंकि आत्मज्ञान के बिना शास्त्राभ्यासादि सब फोकट (व्यर्थ) है।

संसार अनादि से होता हुआ भी एक समय का है। यदि अनादि-अनन्त अपने स्वभाव की ओर दृष्टि करे तो ही अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर अतीन्द्रिय महापदार्थ स्वयं भगवान है, उसका पता चलता है। आत्मा से किसी भी समय किसी का सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जब तक मिथ्यात्व रहता है, तब तक मिथ्यादृष्टि सम्बन्ध माने बिना रहता नहीं; इसलिए मिथ्यात्व को दूर करने के लिए एकमात्र अपने त्रिकाली परमपारिणामिकभाव का आश्रय लेकर सम्यक्त्व प्रगट करना और फिर विशेष एकाग्रता करके श्रेणी केवलज्ञान, सिद्धदशा प्राप्त करना, प्रत्येक जीव का कर्तव्य है।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 11-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - भगवान की स्तुति क्या है ?

उत्तर - मिथ्यादृष्टि और केवली भगवान को तो स्तुति होती ही नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को अपना पता ही नहीं है कि मैं कौन हूँ? वह मात्र राग की स्तुति करके संसार का पात्र बनता है। केवली भगवान पूर्ण हो चुके हैं; इसलिए स्तुति का प्रश्न नहीं। मात्र चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक स्तुति होती है। यह स्तुति तीन प्रकार की है। (1) 4-5-6 गुणस्थान की स्तुति, जघन्य; (2) 8 से 11 गुणस्थान तक उपशमश्रेणी की मध्यमस्तुति; (3) 8 से 12 तक गुणस्थान क्षायिकश्रेणी की उत्तमस्तुति।

स्तुति का सम्बन्ध पर से, कर्म से, राग से नहीं है। जिस जीव ने अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान आत्मा को, अर्थात् बहिरङ्ग में प्रगट अति स्थूल जड़स्वभावी इन्द्रियों से; अन्तरङ्ग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा को — निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता, अर्थात् प्रज्ञारूपी छैनी से सर्वथा

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

अलग किया। भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड, स्वरूप है, उसे अखण्ड भगवान आत्मा की प्रज्ञारूपी छैनी से भिन्न किया। भगवान की दिव्यध्वनि आदि इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ हैं; उनको प्रज्ञारूपी छैनी से सर्वथा भिन्न किया, तब जितेन्द्रिय जिन 4-5-6 गुणस्थान की जघन्यस्तुति है। अर्थात्, जैसा अपना स्वभाव है, उसमें निर्विकल्पता होना — जिसमें द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म का विकल्प भी नहीं; एकमात्र सिद्ध जैसी दशा का प्रगट होना, वह भगवान का लघुनन्दन है।

जब वह सविकल्पदशा में आता है — अहो! यह भगवान तीर्थङ्करादि ऐसे परिपूर्ण स्वभाव की साधना करके पूर्ण हुए हैं, मैं भी अपने में लीन होकर पूर्ण होऊँ, — ऐसा विकल्प, व्यवहारस्तुति है। इस विकल्प को ज्ञानी, हेय जानता है। चौथे गुणस्थान में देव-गुरु-शास्त्र के आदर का भाव, पाँचवें गुणस्थान में व्रतादि का विकल्प, छठवें गुणस्थान में महाव्रतादि के विकल्प को ज्ञानी हलाहल जहर मानता है। **वास्तव में तो सविकल्पदशा में जो अपनी-अपनी भूमिकानुसार शुद्धि है, वह व्यवहारस्तुति है।**

लेकिन उसके साथ-साथ भूमिकानुसार राग आता है; वह राग अन्य प्रकार का नहीं होता है, उसका अभाव करके नियम से शुद्ध में आ जावेगा; इसलिए उसे व्यवहारस्तुति कहा है। जिसको निश्चयस्तुति प्रगट हो गयी हो, उसकी बात है।

मध्यम स्तुति 8 से 11 गुणस्थान तक —

जब, भावलिङ्गी मुनि में जो अबुद्धिपूर्वक उपशमश्रेणी में राग होता है, उसका मालिक कर्म है। उसकी ओर दृष्टि न देकर, अपने में उनका उपशम किया, —उसका तिरस्कार किया, प्रतिहत पुरुषार्थ किया तो यह मध्यमस्तुति है।

उत्तमस्तुति 8 से 12 गुणस्थान में —

जब अप्रतिहत पुरुषार्थ द्वारा भाव्यभावकरूप जो विकार था, उसका सर्वथा तिरस्कार किया, अपने में लय हो गये तो वह उत्तमस्तुति है।

अज्ञानी को स्तुति होनी ही नहीं; इसलिए अज्ञानी को सत् समागम करके अपनी आत्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के बिना, भगवान की स्तुति नहीं हो सकती; राग की स्तुति है, मिथ्यात्व है। पञ्च परमेष्ठी की स्तुति, उनके रूप हो जाना है। जैसे, सिद्धभगवान की स्तुति, अर्थात् सिद्ध बन जाना है; अरहन्त भगवान की स्तुति, अरहन्त बन जाना है। द्रव्यकर्म-

मङ्गल समर्पण

जिस प्रकार बड़े दरिद्री को अवलोकनमात्र चिन्तामणि की प्राप्ति हो और वह अवलोकन न करे, तथा जैसे कोढ़ी को अमृत-पान कराये और वह न करे; उसी प्रकार संसार-पीड़ित जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बने और वह अभ्यास न करे तो उसके अभाग्य की महिमा हमसे तो नहीं हो सकती। उसकी होनहार ही का विचार करने पर अपने को समता आती है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

नोकर्म-भावकर्म रहित निर्विकल्प भावश्रुत हुए, वह निश्चयस्तुति है। जब अपने में नहीं रह सकता, तब जो-जो भगवान आगे हुए हैं, उनके प्रति विचार आना कि यह ऐसे स्वभाव का आश्रय करके पूर्ण हुए हैं। मैं भी अभी पूर्ण होऊँ, यह व्यवहारस्तुति है — ज्ञेय है। शरीरादि की क्रिया, स्तुति नहीं हैं। अपने अन्दर जो अनादि अनन्तरूप भगवान था, उसे वर्तमान पर्याय में प्रगट करना, वह तीर्थ है। जो प्राप्त हुआ है, उसकी रक्षा करना और जो बाकी है, उसे प्राप्त करना, वह भगवानपना है। साधक को स्तुति होती है।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय – प्रातःकाल **दिनाँक 12-2-1969**

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – पाँच भावों को जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर – अपने अन्दर परमपारिणामिकभाव अनादि-अनन्त एकरूप रहनेवाला भगवान है; उसका आश्रय ले तो औदयिकभाव भागना शुरु होता है और धर्म का उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव प्राप्त हो जाता है। एकमात्र जो द्रव्यरूप, गुणरूप त्रिकाली पारिणामिकभाव है, उसके आश्रय से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि, पूर्णता होती है। औदयिकभाव, संसाररूप है। क्षायिकभाव, पूर्ण मोक्षस्वरूप है। संवर निर्जरारूप उपशम, क्षयोपशमभाव है। संवर-निर्जरा-मोक्ष, एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायक के आश्रय से ही प्रगट होते हैं। कर्म, पर, या राग के आश्रय से तीन काल, तीन लोक में प्रगट नहीं होते हैं।

प्रश्न – आत्मार्थी कौन है ?

उत्तर – जिसने अपने आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति की है और परिपूर्णता प्राप्त करके ही रहेगा; जिसे पर की, राग की स्वप्न में भी इच्छा नहीं है, वह आत्मार्थी है। ''तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्याय अनुभव तू उसे; उसमें

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

ही नित्य बिहार कर, न बिहार कर पर द्रव्य में''॥ समयसार, गाथा 412॥ यह आत्मार्थी का लक्षण है।

प्रश्न – क्या द्रव्यलिङ्गी आत्मार्थी नहीं है?

उत्तर – बिल्कुल नहीं। — क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, आत्मार्थी कहलाता नहीं है?

प्रश्न – सम्यग्दृष्टि की पहिचान, मिथ्यादृष्टि कैसे करें?

उत्तर – मिथ्यादृष्टि वास्तव में सम्यग्दृष्टि की पहिचान नहीं कर सकता है लेकिन जो मिथ्यादृष्टि अपना कल्याण करना चाहता है; जिसे संसारसुख, दु:खरूप, प्रतीत होते हैं, वह शास्त्राधार द्वारा पहिचान कर सकता है। जैसे, जिस ज्ञानी की वाणी में ऐसा आवे — 'तेरा किसी भी द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है; तू स्वयं भगवान है; तेरी मूर्खता से ही एक-एक समय करके अनादि से संसार है; तू अपना आश्रय ले तो अभी संसार का अभाव हो सकता है। संसार का कोई भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है, और वीतरागता ही प्रगट करने योग्य कार्य है' — वह इन बातों से जान लेता है कि यह ज्ञानी है। शुभभाव से, पर से कल्याण होना कहे, वह अज्ञानी है — ऐसा मिथ्यादृष्टि जान सकता है।

प्रश्न – जब, संसार में एक ही आत्मा है, तब कौन किसको समझाये?

उत्तर – भाई! अनन्त आत्माएँ हैं; एक आत्मा के स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का, दूसरी आत्माओं से सर्वथा पृथकपना है; इसलिए एक आत्मा है, यह मिथ्यादृष्टियों की कल्पनामात्र है।

(तात्पर्य यह है कि वस्तु व्यवस्था के इस नियम को न समझकर, इसका उल्टा ग्रहण करके, अन्यमत की भाँति एक आत्मा मानना, कल्पनामात्र है।)

प्रश्न – संसार में कलंक क्या है?

उत्तर – अपने आप को न जानना, यह कलंक है; पर से, राग से भला मानना, महान मिथ्यात्वरूप कलंक है, जो निगोद का कारण है।

प्रश्न – कारणपरमात्मा-कार्यपरमात्मा में क्या अन्तर है?

उत्तर – कारणपरमात्मा कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, अनादि-अनन्त भगवान बनने की शक्ति कहो — एक ही बात है। यह प्राणीमात्र के पास मौजूद हैं क्योंकि कारणपरमात्मा के बिना कोई जीव नहीं।

कार्यपरमात्मा — संवर, निर्जरा, मोक्षस्वरूप है। कार्यपरमात्मा, चौथे

स्वाधीन उपदेशदाता गुरु का योग मिलने पर भी, जो जीव धर्मवचनों को नहीं सुनते, वे धीठ हैं और उनका दुष्ट चित्त है अथवा जिस संसारभय से तीर्थङ्करादि डरे, उस संसारभय से रहित हैं, वे बड़े सुभट हैं।

– **श्री नेमिचन्द्र भण्डारी**

गुणस्थान से शुरु होकर तेरहवें गुणस्थान में पूर्ण कार्यपरमात्मा बन जाता है। कार्यपरमात्मा, पर्यायरूप है। यह कार्यपरमात्मा, कारणपरमात्मा के ही आश्रय से उत्पन्न, वृद्धि और पूर्णता को प्राप्त होता है।

प्रश्न – भक्तामर पाठ, बाहरी क्रिया सुधारने से, व्रतादि करने से, परभगवान का आश्रय लेने से हमारी कार्य सिद्धि होती है या नहीं?

उत्तर – भक्तामर पाठ बोलना, भाषावर्गणा का कार्य है; मैं उसे बोलता हूँ, इससे मुझे लाभ हो जावे — यह मान्यता, मिथ्यात्व है और परम्परा निगोद का कारण है। बाहरी क्रिया, व्रतादि और परभगवान यह सब पर हैं, इनसे अपना भला मानता, अनन्त संसार का कारण है; मोक्ष का कारण नहीं। इनके मानने से संसार, अर्थात् चारों गतियों की सिद्धि होती है; संवर, निर्जरा, मोक्ष की सिद्धि नहीं होती है।

प्रश्न – भिखारी कौन? बादशाह कौन?

उत्तर – जिसने अपने आश्रय से सम्यग्दर्शनादि प्राप्त किया, वह बादशाह है; जिसने प्राप्त नहीं किया, वह करोड़पति-अरबपति होते हुए भी भिखारी है।

प्रश्न – मोक्ष की इच्छा तो उत्तम है न?

उत्तर – जब तक मोक्ष की इच्छा होगी, मोक्ष नहीं होगा।
इच्छा, वह दु:ख; इच्छा रहित, वह सुख।

प्रश्न – क्या करे तो धर्म की प्राप्ति हो?

उत्तर – अपना आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति हो।

यह सब 11-2-69 की रात्रि में श्री पूज्य गुरुदेवश्री से प्रश्न पूछे थे, उनका उत्तर मैंने अपनी बुद्धि अनुसार लिखे हैं, इसमें त्रुटि मेरे खाते हैं और ठीक बात गुरुदेव भगवान के खाते में है। यह बातें ज्ञानी को ही ठीक जँचेंगी; मिथ्यादृष्टि को नहीं।

जय गुरुदेव-जय गुरुदेव!

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

जो अनेक क्षमादिक गुण तथा व्याकरणादि विद्या का स्थान है, तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोड़नेयोग्य ही है। जैसे कि उत्कृष्ट मणिसंयुक्त होने पर भी, सर्प है, वह लोक में विघ्न ही का करनेवाला है।

– श्री नेमिचन्द्र भण्डारी

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय – रात्रि 9 बजे **दिनाँक 12-2-1969**

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – प्रवचनसार 80 वीं गाथा का क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर – भगवान और मेरी आत्मा में द्रव्य-गुण तो एक जैसा ही है; भगवान की पर्याय शुद्ध हो गयी है, मेरी पर्याय में अशुद्धि है — ऐसा जानकर, अपनी वर्तमान पर्याय में अपने द्रव्य-गुण के अभेद पिण्ड की ओर दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, और अनादि का मोह-राग-द्वेष का अभाव हो जावे, तब भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान कहलाता है। अपना अनुभव होने पर, अपनी साधकदशा को जाना, गुरु को जाना, संवर-निर्जरा को जाना, संवर-निर्जरा किसके अभावपूर्वक हुई, उसको (आस्रव-बन्ध) भी जाना और अपनी साध्यदशा (पूर्ण अवस्था) कैसी होगी, उसे जाना — मोक्ष को जाना। मोक्षस्वरूप देव हैं, उनको भी जाना। अपने को जानने का फल सम्पूर्ण को जाना और सुख की प्राप्ति, यह 80 वीं गाथा का प्रयोजन है।

प्रश्न – अज्ञानी को धर्म की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर – अज्ञानी जीव, दया-दान-भक्ति आदि शुभभावों को, बाहरी क्रियाओं को मुख्य करता है और इससे कल्याण होगा — ऐसा मानता है; ऐसी उल्टी मान्यता से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को गौण करता है, और पूजादि को मुख्य करता है। अर्थात्, जिसे करना चाहिए मुख्य, उसे करता है गौण; जिसे करना चाहिए गौण, उसे करता है मुख्य; इसी कारण अज्ञानी को धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। यदि ध्रुव को ध्येय बनावे तो परमात्मदशा प्रगट हो। अनादि से पर को अधिक जाना है; यदि अपने को अधिक जाने तो धर्म की प्राप्ति हो।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन होने पर मोक्ष होगा ही, यह कैसे ?

उत्तर – जब दूज हुई तो पूर्णिमा अवश्य ही होगी; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर, मोक्ष होगा ही होगा।

प्रश्न – अज्ञानी किसमें आनन्द मानता है ?

उत्तर – जैसे, एक चूहा ऐसा होता है जो कुम्हार के बर्तनों की भट्टी में ही उत्पन्न होता है, वह अग्नि की भट्टी में ही आनन्द मानता है, वहाँ से बाहर निकले तो मर जाता है; उसी प्रकार अज्ञानी मोह-राग-द्वेष की भट्टी में ही आनन्द मानता है, उसे वहाँ से निकलना अच्छा नहीं लगता। मोह-राग-द्वेष की भट्टी में ही घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न – क्या अज्ञानी, भगवान का माप नहीं कर सकता?

उत्तर – जैसे, एक बार समुद्र का मेंढ़क, कुँए में आकर गिरा तो कुएँ के मेढ़क से कहा कि समुद्र बहुत बड़ा है। उसने पेट फूलाकर कहा – इतना बड़ा? उसने कहा, नहीं। तब कुएँ के मेढ़क ने एक ओर से छलाँग लगाकर कहा — तो इतना बड़ा होगा? उसी प्रकार अज्ञानी को ज्ञानी का माप नहीं हो सकता। अज्ञानी तो बाहरी क्रियाओं में ही पागल है, वह बाहरी क्रियाओं से माप करता है; अन्दर का माप अज्ञानी के पास नहीं होता है। ज्ञानी तो सिद्धदशा, अरहन्तदशा, गुरुपना सबका माप जानता है, तभी तो वह पूर्णता प्राप्तकर स्वयं पूर्ण भगवान बन जाता है।

प्रश्न – आत्मा का स्वरूप कैसा है?

उत्तर – भाई! आत्मा कैसा? — यह केवली भी नहीं बता सकते क्योंकि वह वचन का विषय नहीं है। जैसे अन्धा-गूँगा, मिश्री का स्वाद जानता है, बता नहीं सकता।

घी का स्वाद भी जब नहीं बता सकते, तब आत्मा कैसा? — यह कैसे बताने में आवे।

जैसे, कालीमिर्च, सफेदमिर्च, लालमिर्च तीनों मिर्चें हैं, स्वाद अलग है, लेकिन अलग-अलग उनका स्वाद नहीं बता सकते। उसी प्रकार चौथे गुणस्थान से लेकर ऊपर तक सब जीव जानते हैं कि आत्मा कैसा है? लेकिन उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अतीन्द्रिय और वचनातीत है। साधकदशा प्रगट होने पर, पूर्णदशा का भी भान हो जाता है; इसीलिए वह क्रम से परिपूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न – संसार में अनेक मत-मतान्तर क्यों हैं?

उत्तर – वस्तुस्वरूप का पता ना होने से अनेक मत हैं क्योंकि जिसको वस्तुस्वरूप तो समझ में आया नहीं, तो ज्ञानी ने कहा-आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है। अज्ञानी को उसकी अपेक्षा का पता नहीं तो एक अज्ञानी ने माना, मात्र नित्य

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

ही आत्मा है; दूसरे अज्ञानी ने माना, मात्र अनित्य ही है। स्याद्वाद -अनेकान्त महामन्त्र का पता न होने से अनेक झूठे मत-मतान्तर दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रश्न – ज्ञानी को राग होता है या नहीं ?

उत्तर – ज्ञानी को राग होता ही नहीं क्योंकि उसकी दृष्टि, स्वभाव पर है। श्रद्धा की अपेक्षा ज्ञानी को अस्थिरता का राग, ज्ञान का ज्ञेय है। चारित्र की अपेक्षा अल्प बन्ध है, उसका नियम से अभाव हो ही जावेगा, इस अपेक्षा ज्ञानी को राग नहीं है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अहमदाबाद

दिनाँक 17-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – क्या आत्मकल्याण करने के लिए शुक्ललेश्या भी कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर – तीन काल-तीन लोक में अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के अलावा चौबीस तीर्थङ्कर, पञ्च परमेष्टी आदि पर आत्मा, पुद्गादि द्रव्य तथा शुभाशुभभाव, आत्मकल्याण के लिए रंचमात्र भी कार्यकारी नहीं हैं।

जैसे, एक बुढ़िया थी। उसकी सुई अंधेरे में गिर गई तो वह उसके बदले जहाँ उजला था, वहाँ ढूँढ़ने लगी। तब किसी से पूछा —बुढ़िया माँ! क्या ढूढ़ रही है ? वह कहने लगी, बेटा! मेरी सुई अँधेरे में गिर गई थी, वहाँ तो कुछ दिखायी नहीं देता, यहाँ पर प्रकाश है; इसलिए यहाँ ढूँढ़ रही हूँ। उसी प्रकार मूर्ख अज्ञानी, आत्मा का सुख है तो आत्मा में, ढूँढता है बाहरी क्रिया, शुभाशुभ में। जैसे, प्रकाश

अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं हैं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती; उन्हें परिणमित कराना चाहे, वह कोई उपाय नहीं हैं, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

में ढूँढने से बुढ़िया को सुई नहीं मिल सकती; उसी प्रकार अज्ञानी को आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, बल्कि निगोद की प्राप्ति होगी।

जैसे, चील के पैर के निशान, ऊपर ढूँढे या पानी में चलती हुई मछली के पैरों के निशान, पानी में ढूँढे तो कभी भी नहीं मिल सकते क्योंकि जहाँ चीज हो तो प्राप्ति हो। उसी प्रकार पर की क्रिया या पर भगवान — देव-गुरु-शास्त्र से, शुभभाव से कभी भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि जहाँ बीज नहीं है, वहाँ से प्राप्ति नहीं हो सकती है; एकमात्र अपने भगवान का आश्रय ले तो प्राप्ति हो।

माला, गले में है; ढूँढ़े भण्डार में, तो कभी भी नहीं मिल सकती; उसी प्रकार रत्नत्रय है आत्मा में, और ढूँढ़े पर देव-गुरु-शास्त्र के पास या शुभभाव में, तो तीन काल – तीन लोक में प्राप्त नहीं हो सकता है।

सम्यग्दर्शन है आत्मा के अभेदस्वभावी श्रद्धागुण में; ढूँढ़े, कर्म के उपशादि में या गुरु से, तो कभी भी प्राप्ति नहीं होगी, बल्कि परम्परा निगोद का पात्र हो जावेगा। अपने त्रिकाली पिण्ड पर दृष्टि दे तो तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो और क्रम से श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणी, अरहन्त, सिद्धपना प्रगटे।

किसी को जाना है देहली और चल दे बम्बई की सड़क पर, और खूब तेजी से दौड़ लगावे तो वह देहली नहीं पहुँच सकेगा, बल्कि देहली से दूर होता चला जावेगा; उसी प्रकार आत्मा, कल्याण के लिए देव-गुरु-शास्त्र के हाथ जोड़े, पूजा करे, यात्रा करे, नग्नमुनिपना ले ले, शरीर को सुखाये, सुखाकर मर जावे, बेले चौले करके मर जावे, शास्त्रों का निरन्तर अभ्यास करे, द्रव्यार्थिक और पयार्थिकनय आदि का खूब घटाटोप करे तो उसे कभी भी धर्म की प्राप्ति ना होगी, बल्कि निगोद का पात्र होगा। इसके बदले अपनी आत्मा का आश्रय ले तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जावे, सुख की प्राप्ति हो जावे।

प्रश्न – लोग, धर्म की प्राप्ति के लिए घर छोड़ते हैं; नियम, व्रतादि करते हैं, महीनों के उपवाशादि करते हैं, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करते हैं, ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण करते हैं, तब भी सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर – धर्म की प्राप्ति एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान के आश्रय से ही होती है। ऊपर कहे – करे अनुसार नहीं, क्योंकि प्राप्त में से प्राप्ति होती है। ऊपरी क्रिया कोई शरीर की है, कोई विकारी क्रिया की है; इसलिए इनमें से कभी भी धर्म की प्राप्ति असम्भव है। एकमात्र अनादि-अनन्त अपना स्वभाव है, उसकी दृष्टि करे

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

तो जीवन में शक्ति आवे और परम्परा क्रम से मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बने।

प्रश्न – भाई! जब तुम इतनी बात जानते हो और अपने को सम्यग्दृष्टि कहते हो, मानते हो, तब तुम अभी परिपूर्ण मोक्ष को प्राप्त क्यों नहीं होते?

उत्तर – चौथे गुणस्थानवर्ती भगवान आत्मा की दृष्टि, हमेशा अपने स्वभाव पर ही रहती है; उसे भगवान आत्मा का सारा भेद मालूम है लेकिन अपने में स्थिरता ना होने से वह परिपूर्ण मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। वास्तव में दृष्टिमुक्ति तो हो ही गयी है और विदेहमुक्ति भी दूर नहीं है क्योंकि उसे स्वभाव का आश्रय निरन्तर रहता है। उसी में से (स्वभाव में से ही) मुनिदशा, केवलज्ञान, मोक्ष प्रगट होगा; और ऐसा कहना कि सम्यग्दर्शन होते ही परिपूर्णता होनी चाहिए? उसे भेदाभेद विपरीतता वर्तती है क्योंकि देखो! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन पूर्ण हो जाता है। चारित्र, बारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है। ज्ञान–दर्शन–वीर्य की पूर्णता 13 वें गुणस्थान में है। 13 वें गुणस्थान में भी असिद्धत्त्व, अव्याबाध अगुरुलघुत्व, कर्ताकर्मादि तथा वैभाविकशक्ति आदि गुणों के परिणमन में अशुद्धता है क्योंकि प्रत्येक गुण का परिणमन स्वतन्त्र है।

प्रश्न – क्या जानने से आत्मा का अनुभव अवश्य हो?

उत्तर – छह द्रव्य, सात तत्त्व के नाम लक्षणादि जानकर, छह द्रव्यों में से एकमात्र अपने जीवद्रव्य का आश्रय ले तो आत्मा का अनुभव हो और सुख हो। सात तत्त्वों में भी एकमात्र अपने जीव का आश्रय ले तो सात तत्त्वों का भेद कहने में आवेगा।

प्रत्येक जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, सुख–शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। जो जीव, परवस्तु से, शुभाशुभभाव से अपने को सुखी मानते हैं, वह महा भयंकर भूल में पड़े हैं; उसका फल, निगोद है और अपनी आत्मा के अनुभव का फल, मोक्ष है।

कैलाशचन्द्र जैन

मङ्गल समर्पण

जिस प्रकार कोई मोहित होकर मुर्दे को जीवित माने या जिलाना चाहे तो आप ही दुःखी होता है; उसे मुर्दा मानना और यह जिलाने से जियेगा नहीं – ऐसा मानना ही उस दुःख के दूर होने का उपाय है; उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि होकर, पदार्थों को अन्यथा माने, अन्यथा परिणमित करना चाहे तो आप ही दुःखी होता है तथा उन्हें यथार्थ मानना और यह परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नहीं होंगे – ऐसा मानना ही उस दुःख के दूर होने का उपाय है। भ्रमजनित दुःख का उपाय, भ्रम दूर करना ही है।

– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अहमदाबाद

दिनाँक 19-2-1969

प्रश्न – संसार में मिथ्यादृष्टियों की दशा कैसी होती है ? उन्हें क्या अच्छा लगता है ? क्या अच्छा नहीं लगता ?

उत्तर – जैसे कुत्ता, हड्डी को चूसता है और मानता है कि इसमें मजा आ रहा है। हड्डी में खून नहीं है, बल्कि कुत्ते के मसूड़ों में खून निकलता है, वह मानता है कि हड्डी में से आ रहा है। हम सभी कुत्तों को इकठ्ठे करके, हाथ जोड़कर कहें और समझावें कि भाई! हड्डी में खून नहीं है, क्या कोई कुत्ता मानेगा ? आप कहेंगे, कि कोई भी कुत्ता न मानेगा; उसी प्रकार निगोद से लगाकर द्रव्यलिङ्गी मुनि तक के सभी मिथ्यादृष्टियों को इकट्ठे करके हाथ जोड़ करके कहे कि भाई! 'बाहरी क्रिया; शुभाशुभभावों; यात्रा के भावों से; जिस भाव से बन्ध होता है, उस भाव से; तीर्थङ्कर प्रकृति का जिस भाव से बन्ध होता है; 28मूलगुणों के पालन से; मुनिपना तथा 12 अणुव्रतों के पालन से; श्रावकपना व देव-गुरु-शास्त्र के राग से, सम्यग्दर्शनपना नहीं होता है; यह तो सब संसार का ही कारण हैं क्योंकि भगवान ने जितने भी शुभाशुभभाव है, उन सबको अपवित्र, घिनावना-मैल, जड़स्वभावी, दुःख का कारण तथा बन्धरूप, दुःखरूप, अध्रुव, अनित्य, अशरणादि कहा है।' क्या मिथ्यादृष्टि यह मानेगा ? कभी भी नहीं। बल्कि विरोध करेगा। तो भाई! जो जीव, वर्तमान में **पूज्य गुरुदेव, जो नियम से भावी तीर्थङ्कर हैं और वर्तमान में उन्होंने पञ्चम काल को चौथा काल व साक्षात् तीर्थङ्कर के विरह को भुला दिया है, जो अनादि से तीर्थङ्करादि कहते आये हैं, वह ही बात आज सोनगढ़ से भावी तीर्थङ्कर के रूप में कह रहे हैं कि** 'भाई! तेरा कल्याण एकमात्र तेरी मूर्खता से ही नहीं हुआ। तेरे कल्याण करने में दूसरी कोई भी रुकावट नहीं है; एकमात्र तेरी एक समय की एकत्वबुद्धि है – कर्मादि तथा कोई परद्रव्य बिल्कुल नहीं हैं। तू अनादि-अनन्त भगवान है। उस तेरे भगवान में, परद्रव्य का, परद्रव्य के गुणों और पर्यायों का समावेश नहीं है, उनसे तेरा अत्यन्ताभाव है और उस तेरे भगवान आत्मा से राग द्वेष का भी सम्बन्ध नहीं है। वह रागद्वेष, आत्मा से बाहर ही लौटता है। तू एक बार उस भगवान चैतन्यस्वभावी को पवित्र, निर्मल, सुखरूप, ध्रुव, अचल, नित्य शरणरूप, वर्तमान में सुखरूप,

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

भावी में भी सुखरूप है — ऐसा सत् अकारण अनादि-अनन्त स्वत: सिद्ध है, उसकी ओर दृष्टि करें तो उसी समय संसार का अभाव और धर्म की प्राप्ति हो जावेगी।'

संसार, स्त्री-पुत्र-मकानादि नहीं है; संसार तो मोह-राग-द्वेष, अर्थात् अपने स्वभाव का पता ना होना है। धर्म तेरे अन्दर लवालव भरा है; प्राप्त में से प्राप्ति होती है और उसी अपने स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप और मोक्ष होता है; पर के आश्रय से, शुभाशुभभावों के आश्रय से निगोद होता है।

प्रश्न – हे गुरुदेव! आप जो बात कहते हैं कि 'आत्मा को आश्रय करो; पर का, शुभाशुभभाव का आश्रय मत करो', जब तक मिथ्यादृष्टि रहेगा, उसके हृदय में कैसे बैठ सकती है ?

उत्तर – वास्तव में मिथ्यादृष्टि के हृदय में नहीं बैठ सकती है लेकिन जैसा ज्ञानी कहते हैं, वैसा मानकर, अपने आत्मा का आश्रय लेना चाहिए और मिथ्यादृष्टि को मिथ्यादृष्टिपना दूर करने के लिए हेय -उपादेय, छह द्रव्यों का, सात तत्त्वों का, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, छह कारकों का तथा त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप, शास्त्रों से — गुरु समागम से जानना चाहिए। ऐसा जानकर, यदि स्वभाव का आश्रय ले तो मिथ्यादृष्टिपने का अभाव हो सकता है; मात्र जानने से, विचार करने से मिथ्यादृष्टिपना दूर नहीं होगा, बल्कि प्रज्ञारूपीछैनी से राग अलग, आत्मा अलग — ऐसा अनुभव करने से ही मिथ्यादृष्टिपना दूर होगा और सम्यक्त्वादि की प्राप्ति हो जावेगी, क्रम से मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जावेगा।

जय गुरुदेव!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

मङ्गल समर्पण

हे भव्य! लोक में, नमन करनेयोग्य पुरुष भी जिनको नमस्कार करते हैं, ध्यानेयोग्य पुरुष भी जिसको निरन्तर ध्यान करते हैं तथा स्तुति करनेयोग्य पुरुष भी जिसकी स्तुति करते हैं – ऐसा परमात्मा इस देह में ही विराजता है, उसको जैसे भी बने वैसे जान।

– आचार्य कुन्दकुन्द

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

समय – दिन के 2.30 बजे **दिनाँक 19-2-1969**

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – क्या करे तो कल्याण हो ?

उत्तर – अपने आत्मा का आश्रय करे तो तुरन्त कल्याण हो।

प्रश्न – क्या करे तो कल्याण कभी ना हो ?

उत्तर – अपनी आत्मा को छोड़कर, स्त्री-पुत्र, माता-पिता की आज्ञा पालन करे; देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-पूजा करे; यम-नियम संयम पाले; करोड़ों रुपयों का दान करे; शास्त्रों का दिन-रात घटाटोप करे; स्त्री को छोड़ने से अपने को ब्रह्मचारी माने; बारहव्रतों के पालने से श्रावकपना माने; अट्ठाईस मुलगूणों के पालन को मुनिपना माने; द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयों की खूब घटाटोप करे; सम्मेदशिखर आदि यात्राओं से अपना कल्याण माने; मैं शुद्ध खाता हूँ; अपने को जाने बिना णमोकारमन्त्र की माला जपे; सिद्धचक्र का पाठ करूँ तो मेरा भला हो; भगवान के मन्दिरों में उपकरण दान, विधानादि कराये; मन्दिर बनवाये; धर्मशाला बनवाये तो कभी भी जीव का कल्याण नहीं होगा, क्योंकि उसे अपनी आत्मा का तो पता है नहीं और बाहरी क्रियाओं में, शुभाशुभभावों में पागल बनकर, धर्म मानता रहे और समझे मेरा कि कल्याण होगा तो वह धर्म से दूर होता जाएगा; इसलिए ऐसी मान्यतावाले जीव का कभी भी कल्याण नहीं होगा।

प्रश्न – क्या करे तो आत्मकल्याण हो जावे ?

उत्तर – छह द्रव्य, सात तत्त्व, हेय-उपादेय-ज्ञेय, द्रव्य-गुण-पर्याय का सूक्ष्मता से विचार, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-नैमित्तिक, उपादान-उपादेय; त्यागने योग्य क्या, ग्रहण करने योग्य क्या ? — इत्यादि का सूक्ष्म रीति से अभ्यास करे और साथ ही अपनी आत्मा का आश्रय ले तो कल्याण हो जावे।

प्रश्न – इस पञ्चम काल में मोक्ष तो है नहीं, फिर ज्यादा परेशान होने की क्या आवश्यकता ?

उत्तर – जो ऐसा मानता है कि पञ्चम काल है, यह मोक्ष नहीं होने देता, वह आत्मघाती महापापी है क्योंकि —

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

(1) देखो, पञ्चम काल में जम्बूस्वामी आदि मोक्ष को गये।

(2) विदेहक्षेत्र के भावलिङ्गी मुनि को कोई पूर्व भव का बैरी उठाकर यहाँ ले आवे, वह यहीं पर (पञ्चम काल में) मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

(3) कहीं शास्त्रों में ऐसा नहीं आया कि काल, मोक्ष को रोकता है; उसमें तो यह आया है कि जो पञ्चम काल में उत्पन्न होगा, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होगा। परन्तु पञ्चम काल में उत्पन्न जीव आज भी त्रिरत्न से शुद्ध जीव, आत्मा को ध्याकर स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं व लौकान्तिक में देवपने को प्राप्त करते हैं, वहाँ से च्युत होकर मोक्ष जाते हैं; इसलिए आत्मअनुभवादिक द्वारा सम्यक्त्वादि का होना इस काल में मना नहीं है।

(4) शास्त्रों में आया है कि पञ्चम काल के आखिर तक भावलिङ्गी मुनि, श्रावक, श्राविका होंगे।

(5) **प्रश्न** – पञ्चम काल में कौनसा मोक्ष नहीं है ?

उत्तर – (1) परमपारिणामिकभावरूप मोक्ष तो अनादि-अनन्त सब के पास होता ही है।

(2) दृष्टि अपेक्षा मोक्ष, वर्तमान में चल ही रहा है।

(3) मोहमुक्तमोक्ष, जीवनमुक्त मोक्ष, विदेहमुक्त मोक्ष का दृष्टि अपेक्षा मोक्षवाले जीवों को पता है; वह कैसा है ? कैसे होता है ? कैसे होना है ? — इस अपेक्षा मोहमुक्तमोक्ष, जीवनमुक्तमोक्ष, विदेहमुक्तमोक्ष भी है — ऐसा जानना।

(6) जिसको यहाँ मोक्ष का पता नहीं चला, वह तो वर्तमान में अभव्य के समान है।

वर्तमान में सोनगढ़ के सन्त, सीमन्धर के राजदुलारे वर्तमान में मोक्ष बाँट रहे हैं। जिस जीव को संसार का दुःख लगा हो और वह वहाँ जावे, वे जैसा कहते हैं, वैसा माने - करे तो वहाँ जाते ही पूज्य कानजीस्वामीजी मोक्ष देते हैं — ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, क्योंकि वह कहते है — तू भगवान है! तेरा दूसरी आत्मा से, कर्मादि से तथा शुभाशुभभावों से भी सम्बन्ध नहीं है; बाकी बचा वह तू है। तू उस भगवान आत्मा, जो तू स्वयं ही है, उसकी दृष्टि करे तो मोक्ष तेरे पास है।

जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है; इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपासने योग्य हूँ, अन्य कोई उपास्य नहीं है – ऐसी वस्तुस्थिति है।
– **श्री पूज्यपाद आचार्य**

कहा है कि :—

चार गति दुःख से डरे, तो तज बस परभाव।
निजरूप जो नहीं जानता, करे पुण्य का बस पुण्य॥
घूमे वो यह संसार में, शिवसुख कभी ना होय।
जिनवर अरु शुद्धात्म में, किंचित् भेद न जान॥
मोक्षार्थी हे योगीजन, त्यागो मायाचार॥

(योगसार के दोहे)

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 20-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – आत्मा का कल्याण कैसे हो?

उत्तर – जैसे, सोना में मैल भी है और सोना, बर्तन में भी है; सोने में जो मैल है तथा जिस बर्तन में हैं, उसकी बात ही नहीं, परन्तु सोना चिकना, भारी आदि गुणभेद में ही पड़ा रहे तो सोने को ख्याल में नहीं ले सकेगा; उसी प्रकार आत्मा में जो शरीर – कर्मादि, रागविकार है, उनकी बात है ही नहीं; उनसे आत्मा की पहिचान करने जावे तो आत्मा पहिचानने में नहीं आयेगा, क्योंकि उनकी जात-बिरादरी दूसरी है, अत्यन्ताभाव है, परन्तु आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र हैं, इस गुणभेद में पड़ा रहे तो भी आत्मा समझ में नहीं आ सकता है; इसलिए चार प्रकार का आगम तथा चार प्रकार के अध्यात्म के भेद से आत्मा पकड़ में नहीं आ सकता है। गुणभेद का भी विचार छोड़कर, अभेद त्रिकाली द्रव्य को दृष्टि में ले तो तुरन्त आत्मा का कल्याण हो जाता है, धर्म की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न – परमार्थ पन्थ क्या है?

उत्तर – अपना अनादि-अनन्त परमार्थस्वभाव है, उसका आश्रय लेकर, पर्याय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की प्राप्ति होना, परमार्थ पन्थ है। परमार्थ पन्थ की

परिपूर्णता मोक्ष है। दया, दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रतादि अपरमार्थ पन्थ है। अपरमार्थ पन्थ का फल, चारों गतियों का परिभ्रमणमात्र है। अपरमार्थ पन्थ दु:खरूप, अनित्य, अशरण है। परमार्थ पन्थ सुखरुप, नित्य, शरणरूप है; इसलिए प्रत्येक प्राणी को परमार्थ पन्थ प्रगट करना, प्रगट करके वृद्धि, पूर्णता करना ही एकमात्र कार्य है ?

प्रश्न – महाव्रतादि, अणुव्रतादि, भगवान भक्ति आदि करे, वह जैन है न ?

उत्तर – यह जैनपना नहीं है; यह कलंकपना है, राग है, दु:ख है। अपने त्रिकाली भगवान के आश्रय से मोह-राग-द्वेष रहित मेरी आत्मा का स्वरूप है — ऐसा अनुभवना, वह जैन हैं। तीन प्रकार के जैन — (1) अरहन्त; सिद्ध, उत्तम जैन हैं। (2) सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक मध्यम प्रकार के जैन हैं। (3) चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानवर्ती जघन्य जैन हैं; बाकी सब अजैन /अधर्मी / मिथ्यात्वी हैं। निगोद लेकर से द्रव्यलिङ्गी मुनि तक, सब अजैन /अधर्मी ही हैं।

प्रश्न – सामायिक क्या है ?

उत्तर — जैसा अपना स्वभाव है, उसमें लीनता / एकाग्रता, वह सामायिक है; पाठादि करना सामायिक नहीं है।

प्रश्न — मार्ग क्या है ?

उत्तर — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मार्ग है; दया-दान पूजादि मार्ग नहीं है; अमार्ग है।

प्रश्न — ज्ञानी जब पुण्य नहीं चाहते तो वह पुण्य क्यों बाँधते हैं ?

उत्तर — जैसे, किसान गेहूँ के लिए खेती करता है; घास-फूस के लिए नहीं; उसी प्रकार ज्ञानी एकमात्र अपने स्वरूप में ही रहना चाहता है; जब नहीं रहा जाता, तब अस्थिरता की भूमिका में पुण्य का बन्ध हेयबुद्धि से होता है। वह पुण्य को चाहते नहीं है। कहा है —

'जो त्यागे -उसके आवे आगे।
जो माँगे - उसके भागे।'

इसलिए कहा जाता है — दृष्टिवन्त को भव नहीं और भव का भाव नहीं, क्योंकि स्वभाव से, भव और भव के भाव का अभाव है।

कैलाशचन्द्र जैन

जो कोई मोक्ष की इच्छा रखकर, परद्रव्य की उपासना करता है – परद्रव्य का भक्त और सेवक बनकर उसके ही पीछे डोलता है वह मूढ़जन हिमवान पर्वत पर चढ़ने का इच्छुक होते हुए भी समुद्र की तरफ चला जाता है – ऐसा मैं मानता हूँ।
– **आचार्य अमितगति**

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अहमदाबाद
दिनाँक 21-2-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥
नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावन्तरच्छिदे॥

प्रश्न – वर्तमान में जबकि दिगम्बरों के शास्त्र सच्चे हैं, तब उल्टा क्यों चलते हैं ?

उत्तर – वास्तव में बड़े-बड़े आचार्यादि ने चारों अनुयोगों के शास्त्रों की रचना की, उसका सार (रहस्य) गुरु बिना प्राप्त नहीं होता है। जैसे, हाथी के दाँत खाने के अन्य है, दिखाने का अन्य है; उसी प्रकार आचार्यों ने जो चारों अनुयोगों के शास्त्र बनाये, वह तो हाथी का दाँत दिखाने के समान है, उसका असली रहस्य गुरुगम से प्राप्त होता है।

जैसे, एक सेठ के यहाँ झाड़ू देनेवाली काम करती थी तो सेठ ने कहा कि देखो 'जब कूड़ा फैंको, तब भले आदमी को देखकर डालना।' तब उसने झाड़ू दे ली तो कूड़ा हाथ में लेकर गली की तरफ देखने लगी, ऐसा करते 2.30 घण्टा हो गया। इतने में सेठ आया कि क्या कर रही हो ? उसने कहा, 'अभी तक कितनी देर हो गयी कोई भला आदमी नहीं आया, वह आवे तो मैं उस पर कूड़ा डाल दूँ'।

देखो ! कहने का तात्पर्य क्या है ? उसने अपने बेवकूफी से उलटा समझ लिया।

(2) एक के यहाँ शादी थी, उसने अपनी लड़की से कहा — देखो बेटा ! यह पेटी, जिसमें साड़ियाँ रखी हैं, इस पर (पेटी पर) जरा भी पानी ना पड़ने पावे क्योंकि तुम घर ले जा रही हो। लड़की जरा आगे चली तो वारिस आ गई। लड़की ने तुरन्त बक्सा खोला, उसमें हजार-हजारवाली साड़ियाँ थी, उसने निकालकर पेटी पर डाल दी। जब घर पहुँची, सभी साड़ियाँ गीली। तब लड़की से पूछा — 'यह क्या किया ?' उसने कहा — 'आपने ही तो कहा था कि पेटी पर जरा भी पानी ना पड़े ?'

देखो ! बेवकूफी से साड़ियों का नाश कर लिया।

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

(3) चलते हुए आदमी ने किसान से पूछा — 'किसान क्या बोते हो ?' उसने कहा — 'तुम्हें क्या, हम तुम्हें क्यों बतायें ?' चलते हुए आदमी ने कहा — 'तुम मत बताओ, जब उगेगा, तब हम देख लेंगे।' यह सुनकर किसान ने भगवान से प्रार्थना की — 'हे भगवान ! तू ऐसा कर मेरे खेत में एक दाना भी पैदा न हो, जिससे यह देख ना सके'।

देखो ! बेवकूफी से अपने ही अनर्थ की बाता सूझी।

उसी प्रकार धर्म में आचार्यों ने किसी अपेक्षा कोई बात कहीं। अज्ञानी उसका मतलब अपेक्षा से न जानने से, अर्थ का अनर्थ करता है; इसलिए वर्तमान में दिगम्बरों के शास्त्र सच्चे होने पर भी, उसकी अपेक्षा न समझने से निगोद के पात्र हो रहे हैं।

करणानुयोग में आया 'कर्म के कारण जीव चक्कर काटता है' तो अज्ञानी उसकी अपेक्षा ना समझकर, कर्म ही चक्कर कटाता है — ऐसा मान लेता है। आचार्य का मतलब था कि जब तक जीव अपने स्वभाव को नहीं जानता है, उसकी पर्याय में भटकना होता है, तब कर्म का उदय उपस्थितमात्र है।

चरणानुयोग में आया — व्रत; शीलादि, धर्म हैं। अज्ञानी दया, दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रतादि करते-करते धर्म होगा — ऐसी मान्यता से अनन्त संसार परिभ्रमण करता है। आचार्यों का तात्पर्य था कि जब जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेकर शुद्धता प्रगट करता है, तब 4-5-6गुणस्थान में शुद्धपरिणति के साथ इस-इस भूमिका में इस-इस प्रकार का राग हेयबुद्धि से आता है — यह बताना था।

चार गति के जीव हैं — ऐसा कहा तो अज्ञानी मान लेता है — मैं मनुष्य हूँ ? मैं तिर्यञ्च हूँ। शास्त्रों का तात्पर्य था कि यह भगवान आत्मा है। इसने अपने आप को नहीं जाना, तब उसमें मनुष्यादि का विकल्प होता है। नरक, तिर्यञ्च शरीर तो किसी भी अपेक्षा जीव का नहीं है तथा कर्म का उदयादि का भी आत्मा से सम्बन्ध नहीं है, और पर्याय में जो विकार है, यह अधर्म / दु:खरूप है। यह गलती मेरे से ही है — ऐसा जानकर, मैं गतिरहित अनादि-अनन्त हूँ — ऐसा विवेक करना चाहिए। लेकिन अज्ञानियों को अपेक्षाओं का पता ना होने से, अनन्त संसार का पात्र बना रहता है।

प्रश्न – संसार का अभाव कैसे हो ?

उत्तर – इस शरीर, इन्द्रियों, मन, कर्मादि से किसी भी अपेक्षा सम्बन्ध नहीं

जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है - यह समझकर, हे योगिन! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।
– आचार्य योगीन्दुदेव

है और जो पर्याय में विकार है, वह एक समय का है; मैं अनादि-अनन्त एक, शुद्ध, ममत्वरहित, दर्शन ज्ञानस्वरूप, अभेद पिण्ड हूँ — ऐसा अज्ञानदशा में निर्णय करके, स्वभाव की दृष्टि करे तो संसार का अभाव हो सकता है; इसके अलावा पर से, विकार से, पर्याय से कभी भी संसार का अभाव नही होगा, बल्कि संसार बढ़ता-बढ़ता निगोद में चला जावेगा।

इसलिए जो जीव, दिगम्बर धर्मी है; निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करते हैं फिर भी उनके मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता, उसका कारण अपेक्षा को न समझना है। याद रखना चाहिए —

1- मोक्षमार्ग एक ही है, दो नहीं।

2- परमनिश्चय अनादि-अनन्त, वह ही उपादेय है; पर, विकार तथा अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय, आश्रय करने के लिए कभी भी उपादेय नहीं हैं, परन्तु हेय है।

3- मेरा स्वभाव अनादि-अनन्त एकरूप है। एकमात्र उसकी दृष्टि से ही संसार का अभाव होता है। — ऐसा जानकर, स्वभाव का आश्रय लेकर, अपना कल्याण करना पात्र जीव का लक्षण है। तीन गाथाओं का विचार करो :—

समयसार गाथा 38; समयसार गाथा 73; प्रवचनसार गाथा 192 । यह मोक्ष जाने का अद्‌भूत अपूर्व उपाय है, जो अनादि से जीव से नहीं जाना।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

॥ श्री ॥

दिनाँक 12-6-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - द्रव्यकर्म, नोकर्म की क्रियाओं से अशुद्धता का सम्बन्ध है या शुद्धता का है ?

उत्तर - द्रव्यकर्म —आठ कर्म, अर्थात् एक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृतियों का तथा अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएँ, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, सब नोकर्म हैं — इन दोनों से ना तो अशुद्धता (शुभाशुभ) और न ही शुद्धता का सम्बन्ध है।

अपने अशुद्धभावों से पुण्यभाव का सम्बन्ध है। शुद्ध वीतरागभावों से मोक्ष का सम्बन्ध है, अर्थात् परद्रव्य-गुण-पर्यायों में, 'यह मैं हूँ' — ऐसी मान्यता संसार है और अपनी आत्मा में 'यह मैं' — ऐसा अनुभव-लीनता, मोक्ष है। परवस्तुओं से पुण्य-पाप-शुद्ध का सम्बन्ध नहीं है — ऐसा जानकर, अपनी आत्मा का आश्रय लेकर, शुद्धदशा प्रगट करना प्रत्येक आत्मार्थी का कर्तव्य है।

प्रश्न - संसार-मोक्ष क्या है ?

उत्तर - उल्टी मान्यता, संसार है, अर्थात् अपने त्रिकाली भगवान आत्मा का पता ना होना और पर वस्तुओं में मेरे-तेरेपने की मान्यता ही संसार है; स्त्री-पुत्र-सकानादि, संसार नहीं है।

सच्ची मान्यता, मोक्ष है, अर्थात् अपने त्रिकाली भगवान आत्मा का अनुभव-ज्ञान-लीनता ही मोक्ष है; यम, नियम, संयम, अणुव्रतादि, महाव्रतादि से मोक्ष का सम्बन्ध नहीं है। यदि कोई अणुव्रतादि, महाव्रतादि से संवर, निर्जरा, मोक्ष का सम्बन्ध माने तो उसका फल निगोद है। अपने भावों से ही संसार-मोक्ष है; पर वस्तुओं से, भगवान सीमन्धर, महावीर भगवान, देव-गुरु-शास्त्रादि से कुछ भी नहीं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु का एक दूसरे से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। **अनादि निधन वस्तुएँ अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमे है, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं** — ऐसा अनुभव होते ही, अनादि काल की मिथ्यामान्यता टल जाती है; सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

कैलाशचन्द्र जैन

यह आत्मा ही निश्चय से श्री जिनेन्द्र परमात्मा है। हे भाई! तारण-तरण स्वरूप जिनेन्द्रदेव, जिसे जिन कहते हैं, ऐसे अपने आत्मारूपी जिन भगवान का ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चय से तारण-तरण अरिहन्त परमात्मा है।
- श्री तारणस्वामी

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 26-6-1969

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न - अधर्म/पाप क्या है ? धर्म क्या है ?

उत्तर - (1) अपनी आत्मा को छोड़कर, अनन्त आत्माएँ जिसमें पञ्च परमेष्ठी भी आ गये, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य तथा शुभाशुभ विकारीभाव, जिसमें हिंसा, झूठ, चोरी आदि अशुभभाव तो आया ही है परन्तु दया, दान, पूजा, प्रतिष्ठा, अणुव्रतादि, व्यवहाररत्नत्रयादि से एकत्वबुद्धि, अर्थात् इनसे मुझे लाभ है या नुकसान है — ऐसी एकत्वबुद्धि,मिथ्यादर्शन है; ऐसा ही एकत्व का ज्ञान, मिथ्याज्ञान है; एकत्व का आचरण, मिथ्याचारित है। यह निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि को निरन्तर वर्तते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टियों, को चाहे वह बड़े से बड़ा नामधारी क्यों ना हो, तीनों एक साथ ही होते हैं — यह अधर्म/पाप है, मिथ्यात्व है; इससे ज्यादा पाप संसार में नहीं है।

(2) इन सबमें भिन्नत्व की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन है; इन सबमें भिन्नत्व का ज्ञान, सम्यग्ज्ञान है; इन सबमें भिन्न स्व का आचरण, सम्यग्चारित है। चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक सबको अपनी-अपनी भूमिकानुसार तीनों एक साथ वर्तते हैं क्योंकि श्रद्धा, चौथे गुणस्थान से परिपूर्ण होती है; चारित की पूर्णता बारहवें गुणस्थान में होती है; ज्ञान-दर्शन-वीर्य की पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में होती है; योग की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है।

इस प्रकार चौथे गुणस्थान में श्रद्धा परिपूर्ण तथा ज्ञान, मति-श्रुत और स्वरूपाचरणचारित्र होता है; तीनों एक साथ वर्तते हैं। जैसे-जैसे स्वभाव का आश्रय लेता चला जाता है, वैसे-वैसे क्रम से परिपूर्णता करके सिद्धदशा की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न - सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए और अधर्मदशा को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर- एकमात्र जो अनादि-अनन्त स्वयं भगवान आत्मा है, उसका ही आश्रय करना चाहिए; उसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तथा अधर्मदशा का

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

अभाव हो जाता है; उसी के आश्रय से श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहन्तपना, सिद्धपना प्राप्त होता है, और किसी के आश्रय से, अर्थात् शरीर के, कर्म के, शुभाशुभभावों के आश्रय से कभी भी नहीं, क्योंकि पर के आश्रय से तो अनादि से अधर्म की प्राप्ति होती आई है; इसलिए पर का आश्रय, विकारीभावों का आश्रय, शुद्धपर्यायों का आश्रय छोड़कर, एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय लेना पात्र जीव का कर्तव्य है।

अहो! अनादि से अपने को न जानने से ही चारों गतियों का पात्र रहा है – अपने को जानते ही मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

दिनाँक 24-9-1969

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय-भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे: ॥

प्रश्न – आज अनन्त चौदश है, इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर – आत्मा (मैं), अनन्त-अनन्त महाशक्तिवान पदार्थ है — ऐसा जानकर, उस शक्तिवान महा पदार्थ जो स्वयं हैं, उसकी दृष्टि करके सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्राप्त करके, उसमें अनन्त-अनन्त लीनता करे, पर्याय में भी पूर्ण शक्तिवान प्रगट होना, यह अनन्त चौदश का तात्पर्य है।

प्रश्न — पर्याय में पूर्ण शक्तिवान प्रगट करने का क्या उपाय है?

उत्तर— जो अनादि-अनन्त शक्तिवान पदार्थ स्वयं है, उसकी दृष्टि से ही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र की प्राप्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है, और किसी भी प्रकार के शुभभाव से स्वप्न में भी नहीं। परपदार्थ के आश्रय से धर्म की प्राप्ति तो असम्भव है ही, परन्तु परद्रव्य की क्रिया से, जो कि पुद्गल की है, उससे तो कुछ भी नहीं, परन्तु वह मैं करता हूँ — ऐसी मान्यता अनन्त संसार है। मिथ्यादृष्टि, मात्र विकल्पों में ही पागल है; पर से तो सम्बन्ध मिथ्यादृष्टियों का भी नहीं है। मिथ्यादृष्टि का सम्बन्ध मिथ्यात्व, राग-द्वेष से ही है; ज्ञानी का सम्बन्ध

यह आत्मा, कर्मकृत रागादि अथवा शरीरादि से संयुक्त न होने पर भी, अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है और वह प्रतिभास, निश्चय ही संसार के बीजरूप है।
– **श्री अमृतचन्द्राचार्य**

शुद्धपर्याय और स्वभाव से है — ऐसा जानकर, अपना अनन्त शक्तिवान पदार्थ स्वयं हैं, उसकी दृष्टि करना ही अनन्त तीर्थङ्करों की वाणी का रहस्य है।

उन तीर्थङ्करों की वाणी का रहस्य बतानेवाले वर्तमान में पूज्य कानजीस्वामी जयवन्त वर्तें!

यह रागभाव है, दु:ख का कारण है।

जन्म-मरण इकला करे, सुख-दु:ख भोगे एक; नरक गमन पण एकला, मोक्ष जाय जीव एक।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

दिनाँक 25-9-1969

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सद्दृष्टि निश्चय होय है: ॥11॥ **श्री समयसार**

इस 11वीं गाथा का सार अलौकिक है। एकमात्र अनादि-अनन्त स्वभाव का आश्रय ले तो ही सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर परिपूर्णता की प्राप्ति हो।

मैं आत्मा और ज्ञान-दर्शन-चारित्र, मेरे गुण है — ऐसा भेद भी दृष्टि में रहेगा, तब तक धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए अत्यन्त भिन्न पदार्थ (अपनी आत्मा को छोड़कर) अनन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म आकाश और काल की बात ही नहीं है; इसके अलावा अशुभभाव की भी बात नहीं; दया, दान, पूजा, प्रतिष्ठा — जिसको अनादि से अच्छा माना है, इससे मेरा भला होगा — ऐसी मान्यता से पागल हो रहा है, इन सबसे दृष्टि उठाकर, अभेद ज्ञायक पर दृष्टि देते ही भगवान आत्मा का पता चलता है। जब तक अपना अनुभव न हो, उसे कुछ भी पता नहीं हैं; इसलिए हे आत्मन्! तू अपनी ओर दृष्टि कर तो सुख शान्ति तेरे पास है।

हाय! गजब हो गया, वर्तमान में सच्ची बात सुनने के लायक भी जीव दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। लोग लड़ाई-झगड़ा करने पर उताऊँ हो जाते हैं; इसलिए वर्तमन में अपने को अनुभव करके, उसमें स्थिरता करना ही पात्र जीव का कर्तव्य है।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मुझे सब मालूम है परन्तु मेरे में विशेष स्थिरता नहीं आती है; स्थिरता लाऊँ यह विकल्प भी दु:खरूप है। वास्तव में जैसा स्वभाव है, उसमें अभी-अभी रमने का विकल्प आता हैं। नहीं होने पर, मैं तो सिद्ध भगवान के समान ज्ञायक ही हूँ। जिसे अपना कल्याण करना हो, उसे सब से दृष्टि उठाकर अपने में ही दृष्टि देने से भला होगा।

तूँ स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या-अनुभव तू उसे।
उसमें ही नित्य विहार कर, न बिहार कर पर द्रव्य में॥412॥ श्री समयसार

साक्षात् वस्तुस्वरूप को समझानेवाले श्री कानजीस्वामी को बार-बार नमस्कार।

कैलाशचन्द्र जैन

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

दिनाँक 25-9-1969

है कर्म अशुभ कुशील, अरु जानो सुशील शुभकर्म को।
किस रीत होय सुशील, जो संसार में दाखिल करे॥145॥ *श्री समयसार*

प्रश्न - हम क्या करें, जिससे धर्म की प्राप्ति हो?

उत्तर - वास्तव में तो जो स्वयं है, उसे जानले — अनुभव करले तो धर्म की प्राप्ति हो। यह कार्य आसान है, अपने घर का है, और हो सकता है।

प्रश्न - स्वयं क्या है, हमें यह समझ में नहीं आता तो क्या करें?

उत्तर - छह द्रव्य, उनके गुण-पर्याय, सात तत्त्व, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, हेय-उपादेय-ज्ञेय, त्यागने योग्य मिथ्यात्वादिक का स्वरूप, ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप जानकर, अपना आश्रय ले तो ही धर्म की प्राप्ति हो।

कैलाशचन्द्र जैन

यद्यपि शुद्धोपयोग लक्षणवाला क्षायोपशमिकज्ञान, मुक्ति का कारण होता है तो भी ध्यान करनेवाले पुरुष को, नित्य सकल निरावरण, अखण्ड, एक, सम्पूर्ण, निर्मल केवलज्ञान जिसका लक्षण है - ऐसा परमात्मस्वरूप, वह मैं हूँ, खण्ड ज्ञानरूप नहीं - ऐसी भावना करनी चाहिए।

- आचार्य जयसेन

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सोनगढ़

दिनाँक 11-7-1969

तीन लोक तिहुँ काल माहि नाहि, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिना ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, सो सम्यक् नहि होवै॥

आत्मार्थी बन्धु :—

सविनय जय-जिनेन्द्र देव की।

(1) संसार में तो प्रत्येक जीव सुख चाहता है, दुःख नहीं चाहता है। सुखपाने के लिये अनादि से परवस्तुओं को अपनेरूप परिणमाने का उपाय कर रहा है, लेकिन पर वस्तुएँ अपनेरूप नहीं परिणमती, इससे यह दुःखी बना रहता है। यदि यह स्वयं, अनादि-अनन्त जीव है, इसका एक बार आश्रय ले लें तो पर वस्तुओं के परिणमने की कर्ताबुद्धि है, पराश्रय व्यवहार की रुचि है, वह छूट जावे; धर्म की प्राप्ति होकर क्रम से पूर्णता को प्राप्त करे।

(2) सोना, ऊठना, बैठना, हाथ धोना, नहाना, हाथ जोड़ना, नमस्कार करना, मन्त्र जपना, मुँह से पूजा आदि की क्रिया होना, किताब उठाना-धरना, रोटी खाना, कपड़े पहिनना, उतारना, पाँचों इन्द्रियों के भोग भोगना, पाँचों इन्द्रियाँ, शब्द बोलना, मन-वचन-तन तथा कर्म का उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षयादि आठ कर्म तथा 148प्रकार — इन सबका कर्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्य एकमात्र पुद्‌गलद्रव्य ही है; जीव से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है — ऐसी भगवान की आज्ञा है। तब मैंने रुपया कमाया, बाल-बच्चों का पालन-पोषण किया, उपदेश दिया, बाहरी अनशन, अवमौदर्यादि किया — इस बात के लिये अवकाश ही नहीं है। मैं तो अनादि-अनन्त, नित्य, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा हूँ — ऐसा जानकर, अपने त्रिकाली कारणपरमात्मा का आश्रय लें, अपने मन में तो अपूर्व शान्ति आवे, जन्म-मरण का अभाव हो।

(2) संसार में अपनी आत्मा को छोड़कर जो परपदार्थ हैं, वे इष्ट-अनिष्ट नहीं हैं परन्तु अज्ञानी को अपनी आत्मा का अनुभव नहीं होने से, जिसको चाहता

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

है उसमें राग करता है और इष्ट मानता है; जिसको नहीं चाहता है, उसमें द्वेष करता है और अनिष्ट मानता है। व्यर्थ में अनादि से परपदार्थों को इष्ट -अनिष्ट मानने के कारण, चारों गति का पात्र बनकर निगोद में चला जाता है। इसलिए इष्ट-अनिष्ट रहित अपना ज्ञायक एकरूप भगवान है, उसका आश्रय लेवे तो मोक्ष का पथिक बन जाता है और अनादि की इष्ट-अनिष्ट की खोटी मान्यता का नाश हो जाता है।

(3) अज्ञानी, अनादि काल से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह आदि अशुभभाव हेय मानता है; अणुव्रत, महाव्रत, दया-दान, पूजा, प्रतिष्ठा, यात्रा आदि के शुभभावों को उपादेय मानता है, यह महान अनर्थ मिथ्यात्व का महान पाप है, क्योंकि भगवान ने शुभभावों को भी आस्रव होने से बन्ध का कारण दु:ख का कारण, आत्मा का नाश करनेवाला, अपवित्र, जड़स्वभावी है — यही बताया है और भगवान आत्मा को अबन्धरूप, सुखरूप, आत्मा को प्रगट करनेवाला, पवित्र, चेतनस्वभावी उपादेय ही बताया है — ऐसा जानकर, शुभाशुभभावरहित अपने भगवान आत्मा का आश्रय लेवे तो आनन्द, सुख, ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसकी गिनती पञ्च परमेष्ठी में होने लगती है। मिथ्यात्वादि पाँच बन्ध के कारणों का तथा पाँच परावर्तन का अभाव हो जाता हैं; और अनादि-अनन्त परमपरिमाणिकभाव का महत्व आ जाता है।

(4) धर्म का सम्बन्ध, बाहरी क्रियाओं से तथा शुभाशुभभावों से सर्वथा नहीं है; मात्र आत्मा के धर्म का सम्बन्ध अपने अनन्त गुणों के अभेद पिण्ड से ही है। पात्र जीव उस अभेद पिण्ड भगवान का आश्रय लेकर, शुद्धोपयोगदशा में प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति चौथे गुणस्थान में करता है, तब उसे भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझ में आता है। चौथे गुणस्थान में उसे सिद्ध, अरहन्त, श्रेणी, मुनि, श्रावकपना क्या है ? उसका पता चलता है तथा मिथ्यादृष्टि एकमात्र मिथ्यात्व के कारण ही दुखी है। संसार के प्रत्येक द्रव्य की अवस्था, जैसी केवली के ज्ञान में आती है, वैसा ही साधक ज्ञानी चौथे गुणस्थान में जानता है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है।

(5) भगवान की वाणी का रहस्य सम्यग्दर्शन किये बिना, तीन काल - तीन लोक में 11 अङ्ग 9 पूर्व के पाठी को भी प्राप्त नहीं हो सकता है; इसलिए द्रव्यलिङ्गी को शुक्ललेश्या तथा ज्ञान की उघाड़ होने पर भी, मिथ्यादृष्टि, असंयमी, संसार का नेता कहा है। फिर भी धर्म में विघ्न करनेवाले कुछ महानुभावों को कुछ परलक्ष्यी ज्ञान का उघाड़ होने से, शास्त्रों का अर्थ निश्चय-

प्रथम तो मैं स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ, केवल ज्ञायक होने से मेरा विश्व के समस्त पदार्थों के साथ भी सहज ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध ही है, परन्तु दूसरे स्व-स्वामी से लक्षण सम्बन्ध नहीं हैं, इसलिए मेरा किसी के साथ ममत्व नहीं, सर्वत्र निर्ममत्व ही है।
- श्री अमृतचन्द्राचार्य

व्यवहार की सन्धि का रहस्य न जानने के कारण, अणुव्रत, महाव्रत, दया, दान, यात्रादि करो बाहरी क्रिया करो, पाठ करो — इससे धीरे-धीरे धर्म होगा; और जीव को कर्म चक्कर कटाता है, कर्म हटे तो जीव का भला हो, जितनी तुम शुभभाव की क्रिया करोगे, उतनी जल्दी कर्म दूर हो जावेंगे तथा शुद्धोपयोग आठवें गुणस्थान में 12वें गुणस्थान में बतलाते हैं; इसलिए हे भाई! जो तुम्हें ऐसा उपदेश देता है और तुम उसे मानते हो तो अनादि से अगृहीतमिथ्यात्व तो चला ही आ रहा था और उससे गृहीतमिथ्यात्व की पुष्टि हो गयी। वर्तमान एसे धर्म में विघ्न करनेवाले महानुभावों की विशेषता है; इसलिए इनसे बचना चाहिए। यदि आप बहारी क्रियाओं तथा शुभभावों से भला होता है। ऐसी बातों में पड़े रहोगे, तब तो वर्तमान में त्रस की स्थिति पूरी होने की आयी है, और निगोद मुँह खोले खड़ा है। सावधान! सावधान!!

(6) अनादि से तीर्थङ्करादि कहते आये हैं कि तुम्हारा कल्याण एकमात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही होता है। मोक्षमार्ग एक ही है – वह है वीतरागरूप, परन्तु उसका कथन दो प्रकार का है। शुभभाव, पुण्यबन्ध का कारण है तथा प्रवचनसार में, जो पुण्य-पाप में अन्तर डालता है, वह घोर संसार में घूमता है — **ऐसा कहा है; सो आज वर्तमान युग में इस बात के (जिनेन्द्र भगवान की बात के) परम सत्य वक्ता श्री कानजीस्वामीजी हैं, जिन्होंने वर्तमान में पात्र जीवों को तीर्थङ्कर भगवान का विरह भुला दिया है और पञ्चम काल को चौथे काल के समान बना दिया है। यदि आपको अपना कल्याण करना हो तो सब बातों की मूर्खता छोड़कर 18-8-1969 को कक्षा लगेगी, उसमें आवें, ताकि सत्य बात क्या है, उसको जानकर, अपनी आत्मा का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति हो। मेरे विचार में यदि किसी का कल्याण होना है तो उसमें पूज्य श्री कानजीस्वामी में ही निमित्तपने की योग्यता है। आप में पवित्रता के साथ पुण्य का मेल भी उत्कृष्ट है। याद रहे, होगा अपने से ही; कानजीस्वामी से नहीं। जिनेन्द्र भगवान के घर का रहस्य बतलानेवाला वर्तमान में मेरे विचार से और दृष्टिगोचर नहीं होता; इसलिये भाई इस कार्य को तुरन्त करो।**

(7) जिसे अपना कल्याण करना हो, उसे श्री उमास्वामी भगवान ने जो 'तत्त्वार्थसूत्र' में 'सत् द्रव्य लक्षणम्' 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्' बताया है, उसका रहस्य जानना चाहिए। उसको जानने के लिये छह द्रव्य, सात तत्त्व, चार अभाव, छह कारक, द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतन्त्रता, उपादान-उपादेय, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-नैमित्तिक, त्यागनेयोग्य मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र और ग्रहण

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

करनेयोग्य सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि बातों का सूक्ष्म रीति से अभ्यास करना चाहिए, ताकि प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय भी स्वतन्त्रता जानकर, अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर, सुखी होवे; इसके अलावा और उपाय नहीं है।

(8) अपने कल्याण के लिये पुण्यभाव, पुण्यकर्म, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान की किंचित्मात्र आवश्यकता नहीं है; एकमात्र तू भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है — ऐसा जाने, उसकी ओर दृष्टि करे तो जो भगवान अनादि से शक्तिरूप था, पर्याय में प्रगट हो जाता है; इसलिए सम्यग्दर्शनादि को प्राप्ति के लिये, परपदार्थों से, शुभाशुभभाव से बिलकुल दृष्टि उठाओ। यदि पर का, शुभाशुभभाव का जरा भी आश्रय रहेगा, कभी भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी। वास्तव में अपूर्ण शुद्धपर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है; इसलिए एकमात्र आश्रय करने योग्य अपना भगवान ही है और प्रगट करने योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है — ऐसा जानकर, स्वभाव का आश्रय ले तो अनादि का संकट मिट जावे और जो अपने आप का पता चले, तब अपने में स्थिरता, वृद्धि, पूर्णता करके मोक्ष का पथिक बने।

(9) बालपना खेलकूद में बीता, जवानी विषय भोगों में खोई, वृद्धपना मृतकरूप है; इसलिए समय रहते चेतो! चेतो!!

अमर मानकर निज जीवन को परभव हाय भुलाया।
चाँदी-सोने के टुकड़ों में, फूला नहीं समाया॥
देख मूढ़ता यह मानव की, उधर काल मुस्काया।
अगले पर ले चला, यहाँ से नाम निशान न पाया॥
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोरी सकल जग द्वन्द-फन्द, नित आत ध्याओ॥
त्रिविध आतमा जानकर, तज बहिरातम भाव।
होकर अन्तर आत्मा, ध्या परमात्म स्वभाव॥
ज्यौं रमता मन विषयों में, त्यौं हो आत्मलीन।
शीघ्र मिले निरवान पद, धरे न देह नवीन॥

कैलाशचन्द्र जैन

जीव भिन्न है और पुद्गल भिन्न है, बस इतना ही तत्त्व कथन का सार है। इसके अलावा अन्य जो कुछ भी कहा जाता है, वह उसका ही विस्तार है।
– श्री पूज्यपादस्वामी

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अशोकनगर

दिनाँक 11-1-1970

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु कहान की, भगवन दियो बताय॥

प्रश्न – हम कितने व्रत, उपवास, दान, भगवान की भक्ति करते हैं, हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर – अनादि काल से जीव ने भगवान की आज्ञा का एक समय भी पालन नहीं किया, बल्कि उनकी आज्ञा का तिरस्कार किया; इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ।

प्रश्न – क्या हमने जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए व्रतादि किये, यह भगवान की आज्ञा का तिरस्कार है ?

उत्तर – हाँ भाई ! भगवान की आज्ञा का तिरस्कार है क्योंकि भगवान ने चारों अनुयोगों के शास्त्रों में अपना कल्याण करने के लिए प्रथम हेय-उपादेय की परीक्षा, छह द्रव्य, सात तत्त्व को जानना, उपादान निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार का ज्ञान करना कहा है। ऐसा करके अपने स्वभाव का आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन होता है —ऐसा कहा है। इसके बदले व्रतादि में फँस गया तो सम्यग्दर्शन से दूर हो गया।

प्रश्न – हम व्रतादि छोड़ दें ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना व्रतादि होते ही नहीं है क्योंकि भगवान ने सम्यग्दर्शन होने पर पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी के अभावरूप शुद्धि होने पर, इस प्रकार का राग होता है — ऐसा बताया है। और व्रतादि भी श्रावकपना नहीं है; शुद्धि श्रावकपना है। रत्नकरण्डश्रावकाचार गाथा-2 में, अपना अनुभव हुए बिना, सब अनर्थकारी बताया है तथा सम्यग्दर्शन होने पर व्रतादि का निमित्तपने से आरोप आता है।

प्रश्न – हम बाहरी क्रिया नहीं करें ?

उत्तर – बाहरी क्रिया, अर्थात् शरीर की क्रिया, इसका स्वामी पुद्गल है; जीव नहीं है।

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

प्रश्न – सम्यग्दर्शन के बिना, चारित मान ले तो क्या होगा ?

उत्तर – अनन्त संसार का पात्र होगा। **पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय गाथा -38॥**

प्रश्न – लोग कहते हैं कि शुभभाव भी धर्म है, शुद्धभाव भी धर्म है, बाहरी क्रिया भी धर्म है क्योंकि भगवान ने अनेकान्त बताया है ?

उत्तर – अरे भाई ! तूने भगवान का अनेकान्त जाना ही नहीं। शुद्धभाव ही धर्म है; शुभ और बाहरी क्रिया धर्म नहीं है — यह अनेकान्त है। क्या भगवान कहीं किसी को धर्म कहेंगे ?

कभी नहीं ! वास्तव में लोगों को निश्चय-व्यवहार की सन्धि का पता नहीं है, व्यर्थ में अपना अनन्त संसार बढ़ाते हैं।

प्रश्न – कार्य उपादान से होता है या निमित्त से ?

उत्तर – कार्य हमेशा उपादान की उस समय की योग्यता से ही होता है; निमित्त से कभी नहीं परन्तु जब उपादान में अपनी योग्यता से कार्य होता है, वहाँ निमित्त होता ही है — ऐसा वस्तुस्वरूप है। 'उपादान निजगुण जहाँ, वहाँ निमित्त पर होय; भेदज्ञान प्रमाणविधि, बिरला बूझे कौय।'

प्रश्न – क्या करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर – द्रव्य-गुण-पर्याय का सूक्ष्मता से अभ्यास करके अपने स्वभाव का आश्रय ले तो नियम से कल्याण हो

प्रश्न – बाहरी क्रिया पुद्गल की है; विभावभाव भी अलग हैं — ऐसा आप कहते हो कि तुम भगवान हो – परन्तु हमें क्यों नहीं सूझता ?

उत्तर – भगवान की आज्ञा को मानते नहीं तथा अपना अनुभव होने पर ही सब बात ध्यान में आती है; इसलिए प्रथम अपनी आत्मा का अनुभव करना प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शन के बिना द्रव्यलिङ्गी मुनि भी पापी, अधर्मी, निगोद का पात्र है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

हे जीव ! मैं अकिंचन हूँ अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं, ऐसी सम्यक् भावना तू निरन्तर कर कारण कि इसी भावना के सतत् चिन्तवन से तू त्रैलोक्य का स्वामी होगा। यह बात मात्र योगीश्वर ही जानते हैं। यह योगीश्वरों को गम्य, ऐसा परमात्मतत्त्व का रहस्य मैंने तुझे संक्षेप में कहा।

– **श्री गुणभद्राचार्य**

दिनाँक 23-7-1969

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे, विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये;
कहा रच्यों परपद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुःख सहै,
अब 'दौल' होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

पत्र लिखने का विकल्प, उत्तर देने का विकल्प भी ज्ञानी, दुःख का कारण जानते हैं, फिर भी अपने में नहीं रहा जाता तो ऐसे विकल्पों के ज्ञाता होते हैं –

प्रश्न – द्रव्यकर्म, नोकर्म पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए निश्चय से संसारी के भी इनका भिन्नपना है परन्तु सिद्ध की भाँति उनका (संसारी) कारण-कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम ही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक, 254 नीचे की तीन लाईन) – इसका क्या आशय है ?

उत्तर – पहिले हमको यह विचारना चाहिए – यह कथन किस अपेक्षा चल रहा है ? तब सब बातों का निर्णय होता है। यहाँ पर उभयाभासी का कथन है, जो पर्याय में अपने को सिद्धसमान, केवलज्ञानादि -सहित, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित मानता है। भगवान ने यह बात शक्ति-अपेक्षा कही है परन्तु अज्ञानी को इसका पता न होने से वह पर्याय में मानता है, अतः यहाँ पर बताना है – द्रव्यकर्म, नोकर्म पुद्गल का ही कार्य हैं; संसारी मिथ्यादृष्टि का भी निश्चय से सम्बन्ध नहीं है, परन्तु जैसे सिद्ध भगवान की परिपूर्णता पर्याय में हो गयी है, उनके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अभाव है, उसी प्रकार उभयाभासी अपने साथ भी विकारीपर्याय का, कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं है – ऐसा मान ले तो भ्रम है, क्योंकि अज्ञानी जीव के विकार का और कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, अर्थात् जीव में विकार एक समय का है, अपनी मूर्खता से ही है, वहाँ पर निमित्तरूप कर्म है – ऐसा स्वतन्त्र सम्बन्ध है, इस स्वतन्त्र निमित्त -नैमित्तिक सम्बन्ध को न माने तो भ्रम ही है तथा कारण-कार्य से सम्बन्ध-कार्य, विकार तथा कारण, निमित्त / द्रव्यकर्म से है।

निमित्तकारण, अहेतुक है, सच्चा कारण नहीं है परन्तु सिद्ध के समान,

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

संसारी के भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं हैं – ऐसा मानता है, इसलिए भ्रम शब्द डाला है।

याद रहे – कारण-कार्य के कई अर्थ होते हैं, यह गुरुगम से जानना चाहिए। यहाँ पर कारण-कार्य से आशय निमित्त-नैमित्तिक से ही है। तथा कारण-कार्य, कहीं पर कारण अर्थात् उपादानकारण और कार्य; कर्म को कहते हैं, यह बात यहाँ पर नहीं है।

प्रश्न – मोक्षमार्गप्रकाशक दूसरा अध्याय में पृष्ठ 39 में भवितव्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर – जैसे, जीव ने किसी वस्तु को इष्ट या अनिष्ट मानकर उसे मिलाने का और अनिष्ट को हटाने की इच्छा की – तो कहते हैं कि परवस्तु से मिलाने की, हटाने की इच्छा व्यर्थ है क्योंकि परवस्तु का होना या न होना तुम्हारे हाथ में नहीं है – 'भवितव्य आधीन है' क्योंकि प्रत्येक वस्तु का स्वतन्त्र परिणमन है। वास्तव में यह शंका क्यों होती है ? अज्ञानी को सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा का पता नहीं है और अपना पता नहीं। प्रत्येक वस्तु अनादि निधन अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमती है। किसी का परिणमाया परिणमता नाही – ऐसा। (मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 में लिखा है।)

प्रश्न – क्या द्रव्यलिंगी मुनि को चौथा गुणस्थान भी हो सकता है ?

उत्तर – हो सकता है क्योंकि चौथे गुणस्थान में जीव को विशेष निर्मलता होने लगे, तब वह स्वयं मुनि होना चाहता है, तब बाहरी द्रव्यलिंग भगवान की आज्ञा अनुसार हो जाता है, वह विशेष पुरुषार्थ करता है, उसे सातवाँ गुणस्थान नहीं आता तो चौथा गुणस्थान और द्रव्यलिंग यथार्थ, ऐसा मानता है परन्तु उल्टे कोई पूछे क्या आप मुनि हैं, वह मना कर देगा। लेकिन बाहरी क्रिया में जरा भी हेर-फेर नही होगा, उदिष्ट आहार भी नहीं होगा। जंगल में ही रहेगा। शुभभाव करने का या शुभभाव से लाभ का उपदेश, तीन काल –तीन लोक में नहीं देगा – एकमात्र अपने आत्मा के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति होती है, ऐसा वचन देखने में आवेगा।

4. भाईजी ! वर्तमान में तो हमें द्रव्यलिंग भी कहीं नहीं दिखता है, क्योंकि देखो द्रव्यलिंग कैसा होता है, यह मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 245, 12 लाईन छोड़कर 'द्रव्यलिंगी मुनि.....' पढ़ो देखो –

उसे इतना होने पर भी उसे मिथ्यादृष्टि असंयमी तथा प्रवचनसार 271 में संसार का नेता कहा है।

मङ्गल समर्पण

शुद्ध निश्चयनय से, शक्तिरूप से सर्व जीव शुद्ध-बुद्ध, एक स्वभावी होने से उपादेय हैं और व्यक्तिरूप से पञ्च परमेष्ठी ही उपादेय हैं; उनमें भी अरिहन्त और सिद्ध – ये दो ही उपादेय हैं; इन दोनों में भी निश्चय से सिद्ध ही उपादेय हैं और परमनिश्चयनय से तो भोगाकांक्षादिरूप समस्त विकल्पजालरहित, परमसमाधिकाल में सिद्धसमान स्व शुद्धात्मा ही उपादेय हैं, अन्य सर्वद्रव्य हेय हैं – यह तात्पर्य है।

– श्री नैमिचन्द्र सिद्धान्तदेव

प्रश्न – प्रत्येक द्रव्य में कितनी पर्याय एक समय में होती है ?

उत्तर – एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं – एक समय में, जितने गुण हैं, उतनी ही पर्यायें होती हैं, देखो इसमें वीतरागता भरी है। एक गुण में कितनी पर्याय ? उत्तर – तीन काल के जितने समय, उतनी एक गुण में पर्याय होती है। ऐसा ही प्रत्येक गुण में अनादि अनन्त होता है – ऐसा जानने से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि, अनादि से पर में कर्ताबुद्धि अभाव और अपने स्वभाव पर दृष्टि हो जाती है। यह बात बिना गुरुगम के नहीं होती है। होती अपने से ही है परन्तु ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध की आड़ में अज्ञानी कर्ता-कर्मसम्बन्ध मानता है। वास्तव में निमित्त-नैमित्तिक का ज्ञान, ज्ञानी को ही होता है। कोई कहे निमित्त-नैमित्तिक को तो हम जानते हैं परन्तु हमें आत्मा का पता नहीं, वह झूठा है। निमित्त-नैमित्तिक का सच्चा ज्ञान होते ही ज्ञानी भगवान बन जाता है।

श्री राजारामजी एवं आप यहाँ आवे परन्तु हमको अपना राग था कि आपकी बुद्धि और राजरामजी की बुद्धि अच्छी है, यह बात समझ ले तो कल्याण हो जावे। वास्तव में अनन्त तीर्थंकर किसी का भला बुरा नहीं कर सकते हैं, तब श्री कानजीस्वामीजी किसी का भला-बुरा करें या सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दें – ऐसा नहीं है, परन्तु वर्तमान में सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा ही है, जो अज्ञानी की दृष्टि में नहीं आ सकता है।

श्रीराजारामजी का भाव अभी आने का नहीं है, वह जाने। लेकिन मैं आपको बता दूँ कि **कोई भी मुमुक्षु श्रीकानजीस्वामी को निर्ग्रन्थ दिम्बर मुनि नहीं मानता है, निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही सद्‌गुरु होता है, इसमें शक नहीं है परन्तु अपनी-अपनी अपेक्षा जैसे आपको किसी से 100 मिले तो आपको उसके प्रति आदर का भाव आता है परन्तु संसार में तो और भी करोड़पति हैं, उनके प्रति क्यों नहीं ? उसी प्रकार जिस जीव को जिससे धर्म की प्राप्ति में निमित्तपना आया है, उसके प्रति सद्‌गुरु क्या शब्द है, वह उसे भगवान भी कहें तो कोई हर्ज नहीं है। जैसे – गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय, बलिहारी गुरु कहान की, भगवान दिया बताय॥**

कथा में भी आता है कि एक जगह आचार्य, उपाध्याय, मुनि खड़े थे, वहाँ पर एक श्रावक भी खड़ा था – तो वहाँ पर एक देव ने आकर पहिले श्रावक को

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

नमस्कार किया – उससे पूछा ऐसा क्यों ? उसने कहा उसने पहले भव में मुझे धर्म की बात बताई, यह बात मेरे हृदय में बैठी; इसलिए पहिले मैंने नमस्कार किया है। भाई ! बाहरी बातों में अपना जीवन खो दोगे तो अनर्थ हो जावेगा; इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आपने लिखा श्री कैलाशचन्द्रजी भी साथ आयेंगे, बहुत अच्छी बात है – आप कृपा करके उनको भी छोटी किताब 'लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' घर पर जाकर पढ़ावें और उभयाभासी का प्रकरण पृष्ठ 249–257 तक बार–बार पढ़े और पढ़ावें।

दूसरा कोई किसी को मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि कहे तो दूसरे के कहने से वह नहीं हो सकता है। इसलिए अपने परिणामों की संभाल कर प्रत्येक जीव का कर्तव्य है। कोई हमारी बुराई करता है, वह मित्र मानों – अपने में दोष हो तो निकाल दो, यदि नहीं है तो फिर क्या चिन्ता।

आप राजारामजी से मेरी तरफ से कहना कि आप भी इस बार अवश्य सोनगढ़ आवे तो ठीक रहेगा – ऐसा विकल्प है, राग है। भाई ! यह भी दुःख का कारण है। आप अपने साथ डाक्टर साहब को भी – चावलवाले तथा पिण्डीजी तथा चमनलालजी को भी साथ लावें और अरुणकुमार जी को भी लावे तो ठीक रहेगा। आगे –

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे
अनहोनी कबहु ना होत, काहे होत आधीरा रे॥

जो पत्र भेजा है, आप अपने हितैषियों का भेजे – यदि आप उनके शुभचिन्तक हैं। जो आपने छपाया है, जो अपने भेजी थी।

प्रश्न – सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

उत्तर – (1) शान्ति, कुन्थु, अरहनाथ तीन तीर्थंकर आठ वर्ष की अवस्था में पाँचवाँ गुणस्थान, 96हजार स्त्रियों का योग होता है।

(2) भरत, बाहुबली क्षायिक सम्यग्दृष्टि – तीन युद्ध हुए, आखिर भरत ने बाहुबली पर चक्र चला दिया, तब भी क्षायिक सम्यक्त्वी थे।

(3) रामचन्द्र छह महीने लक्ष्मण की लाश को लेकर घूमे, फिर भी सम्यक्त्वी थे।

(4) महावीरस्वामी का जीव शेर पर्याय में माँस का पिण्ड उसके हाथ में, हिरन के पीछे भाग रहा था, तब मुनि को देखकर अपने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई।

शुद्धनय की दृष्टि से देखने में आवे तो सर्व कर्मों से रहित चैतन्यमात्र देव–अविनाशी आत्मा–अन्तरंग में स्वयं विराज रहा है। यह प्राणी पर्यायबुद्धि, बहिरात्मा उसे बाहर ढूँढ़ता है, यह बड़ा अज्ञान है।
– आचार्य कुन्दकुन्द

(5) सातवें नरक में घोर प्रतिकूलता, वहाँ भी सम्यग्दृष्टि होते हैं, वास्तव में बाहरी संयोग से, राग-द्वेष का माप नहीं है, क्योंकि चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि को बाहरी संयोग बहुत है, द्रव्यलिंगी मुनि को नहीं है।

(2) द्रव्यलिंगी मुनि को ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी हो, मिथ्यादृष्टि है तथा शिवभूति मुनि अल्प उघाड़ सम्यग्दृष्टि उसी भव से मोक्ष की प्राप्ति -

याद रखो - बाहरी संयोग, बाहरी सामग्री, पुण्यकर्म-पुण्यभावों से, परलक्ष्यी ज्ञान से ज्ञानी, अज्ञानी की पहिचान नहीं है।

मिथ्यादृष्टि, बाहरी संयोगों से, परलक्ष्यी ज्ञान से पहिचान करते हैं; इसलिए उनका जीवन वैसे ही नष्ट हो जाता है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर ही होती है, वह सबको द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म का ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं है, यह बात मिथ्यादृष्टियों को जँचती नहीं है। देखिये समयसार पृष्ठ 306 से 308 तक तथा समयसार पृष्ठ 205 नीचे की पतली टाइप में, समयसार गाथा 172 से 178 तक खासतौर से देखो।

भाई! सब बातें आत्मा का अनुभव होने पर ज्ञान में आती है; इसलिए लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ; तोरि सकल जग दंद फंद नित आतम ध्यावो।

प्रश्न साफ लिखने चाहिए। अबकी बार प्रश्न ठीक हैं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

दिनाँक 18-2-1971

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

इस जीव ने सुख के लिए वीतराग-विज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं किया, इसलिए इसे सुख की प्राप्ति नहीं हुई।

सब द्रव्यों की स्वतन्त्रता जिसने स्वीकारी, वह तो सम्यग्दृष्टि बन गया।

मेरा मेरे में है - ऐसा मानते ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

जिसने जिनेन्द्र भगवान की आज्ञानुसार तत्त्व का अभ्यास किया - ऐसे अज्ञानी को भी लौकिक में शान्ति रहती है। वह अज्ञानी, तत्त्व के अभ्यास में सूक्ष्म रीति से लग जावे, उसका तुरन्त कल्याण हो जाता है। मिथ्यादृष्टि तत्त्व के अभ्यासी को एकमात्र अपने स्वभाव का ही आश्रय ले तो शान्ति आवे। उसको लेने का प्रयत्न स्वयं में स्वयं को देखना है, उसका उपाय निरन्तर चलता है, एक समय भी नहीं रुकता है। वह जानता है, उपाय यह ही है, और नहीं।

किसी दिगम्बर शास्त्र में विरोध नहीं होता है परन्तु अपेक्षा से कथन होता है। कहीं-कहीं ऐसा भी आता है - ज्ञानी 4-5-6 गुणस्थान में अस्थिरता सम्बन्धी राग को हलाहल जहर मानते हैं तो क्या वहाँ द्वेष हो गया परन्तु उसका मतलब अपने स्वभाव में ही रहने की एकत्वभावना है, यह बात है। उसी प्रकार अज्ञानी, तत्त्व का अभ्यासी विचार करता है - मैं अपने में स्थिर होकर ही रहूँगा। जो शुभभाव आते हैं, उनकी भावना नहीं होती है, क्योंकि आगम में उन्हें हेय कहा है।

संसार में सब जगह काम-भोग की बातें चलती हैं, धर्म की नहीं; इसलिए पात्र जीव को पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर, अपना कल्याण कर लेना चाहिए। गुरुदेव के सान्निध्य, अर्थात् अपने स्वरूप के सान्निध्य में। निमित्तरूप पूज्य गुरुदेव के।

आप रत्नकरण्डश्रावकाचार बड़ी टीका जो आपके मन्दिर में है, पुस्तक आकार में पृष्ठ 353 नीचे के पैराग्राफ से लेकर पृष्ठ 362 तक अवश्य पढ़ना, तथा पृष्ठ 250 से 12 लाईन छोड़कर, से लेकर 304 तक अवश्य पढ़ना और बाद में लिखना क्या नतीजा रहा है। आजकल रत्नकरण्डश्रावकाचार चल रहा है, परसों

जगतिलक आत्मा को छोड़कर परद्रव्य में रमता है.... तो क्या मिथ्यादृष्टि के माथे पर सींग होते होंगे ? श्रेष्ठ आत्मा को छोड़कर पर में रमण करता है, वह मिथ्यादृष्टि ही है।
- श्री मुनिवर रामसिंह

समाधितन्त्र समाप्त किया था। यह अपना ही चलता है। सुबह-शाम सबके सामने समयसार, गाथा 100 वीं तथा प्रमेयत्वगुण चल रहा है। शान्ति अपने में है - यह भी ज्ञानी जानता है; अज्ञानी नहीं। आप सब लोग लगे रहें, कार्य की सिद्धि अवश्य होगी।

आप जिस रास्ते पर चल रहे हो, ठीक है। किसी के चक्कर में, समझाने आदि में मत पड़ना। वर्तमान में कोई विरला ही इधर रुचि करेगा। जो आपकी गोष्ठी है, उसी में अपनी बात चलाओ। हमारी भावना है आप सबको धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता हो। होगी आपके ही द्वारा; दूसरा रंचमात्र भी मदद या नुकसान नहीं कर सकता है।

जिसमें जिसकी मग्नता, उसको उसकी श्रद्धा, और जिसकी श्रद्धा, उसमें आत्मा लीन होता है। *(समाधिशतक, गाथा 95)*

अपने आप भगवान है - ऐसा दृष्टि में न आना, यह ही धोखा है। सब शास्त्रों का सार, उसे दृष्टि में लेना है, इसमें देर नहीं करनी चाहिए।

जैसे व्यापार में दिन-रात लगे रहते हैं; उसी प्रकार इसमें लग जावे तो कल्याण हुए बिना न रहे।

किसी भी शास्त्र में बाहरी क्रिया करो-बात नहीं आती है परन्तु धर्म की प्राप्ति के बाद कैसी-कैसी दशा बाहर की होती है, उसका ज्ञान कराया है।

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र !

आपका

कैलाशचन्द्र जैन

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 18.2.1971

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

(1) इस जीव ने सुख के लिए वीतराग-विज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं किया, इसलिए इसे सुख की प्राप्ति नहीं हुई।

(2) सब द्रव्यों की स्वतन्त्रता जिसने स्वीकारी, वह तो सम्यग्दृष्टि बन गया।

चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत चिनमूरत अनूप
पुद्गल नभ धर्म, अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।

यह जीव, एक-एक समय पागल बनता है और स्वयं अनादि-अनन्त है, उसकी ओर दृष्टि करके तो देखो शान्ति प्राप्त होती है।

यहाँ पर कर्ताकर्म अधिकार, छहढाला, दूसरी ढाल तथा द्रव्य-गुण-पर्याय तथा उभयाभासी का प्रकरण चल रहा है। इतना होने पर भी रुचि में फेर है। जैसे सांप है फिर वहाँ नहीं बैठोगे; वैसे ही परद्रव्य को अलग कहता है, जाना नहीं। परद्रव्य मित्र हैं – ऐसा जानते ही दृष्टि, स्वभाव पर आ जानी चाहिए।

जब वस्तुस्वरूप की जानकारी से शान्ति मिलती है, तो भाई! अनुभव की बात अलौकिक है। यदि मनुष्य जीवन में धर्म की प्राप्ति न हुई तो जीवन किस काम का?

कैलाशचन्द्र जैन

यह आत्मा, परमात्मा के समान है। दोनों के स्वभाव में निश्चय से कोई अन्तर नहीं है। यह आत्मा, परमानन्द में कल्लोल करनेवाला है। परमात्मा, परम शुद्ध है, रागादिरहित वीतराग है, कर्ममलरहित निर्मल है तथा अविनाशी है।

– **श्री तारणस्वामी**

बुलन्दशहर,

दिनाँक 17-3-1971

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

श्रीसमयसार, गाथा - 390 से 404 में दिव्यध्वनि का सार है तथा समयसार, गाथा 396 में अभव्य का दृष्टान्त दिया है। वास्तव में कोई भी जीव हो, उसकी बात है। आत्मा की बात आसान है, मात्र दृष्टि का फेर है। यदि यह अपनी ओर दृष्टि करे तो क्षण भर में निहाल हो जावे। गौतम गणधर, गृहीतमिथ्यादृष्टि क्षण में सम्यग्दर्शन, चार ज्ञान का धारी गणधर बना। अंजन चोर महापापी, उसी भव से मोक्ष का पथिक बन गया और वर्तमान में दिगम्बरधर्म पाने पर भी यह अपनी ओर नहीं आता है, यह आश्चर्य है।

श्रीप्रवचनसार, गाथा 18 में अलौकिक बात आयी है। उसमें द्रव्य का लक्षण अस्तित्व है और अस्तित्व, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है; इसलिए किसी पर्याय से उत्पाद, किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्यपना, यह प्रत्येक पदार्थ में होता है। ऐसी बात स्वीकार करनेवाले की दृष्टि, स्वभाव पर होनी चाहिए।

आजकल दोनों समय छहढाला चल रही है और तीसरी ढाल शुरु की है। **इस छहढाला में वास्तव में बारह अंग चौदह पूर्व का रहस्य समाया है।** जैसे आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा तीन भेद किए तो यहाँ पर समझना चाहिए कि आत्मा तो चैतन्यरूप एक ही प्रकार का है; पर्याय में तीन भेद हैं। बहिरात्मापना यह बताता है - इसने अनादि से जीव को नहीं जाना और अपने जीव पर दृष्टि दे तो तुरन्त अन्तरात्मा बन जाता है; अपने में विशेष दृष्टि देवे तो परमात्मापना प्रगट होता है। अब विचारो - किसकी जरूरत रही? किसी की भी नहीं। मात्र अपनी मूर्खता से पागल है, मूर्खतारहित स्वभाव को देखे तुरन्त मूर्खता का अभाव हो जाता है।

जिस जीव को कहना आ गया, उसे विशेष पुरुषार्थ करके अपना कल्याण कर लेना चाहिए। आत्मा कहते ही अपनी आत्मा पर दृष्टि जावे तो पाँच बोल याद

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

किये, अन्यथा तोते जैसी रटन है। यह जीव वास्तव में अनादि से अपने घर से बाहर गया ही नहीं, परन्तु पर को अपना मानने में ही पागल बन रहा है। यदि एक बार – 'यह स्वयं अपने घर में ही रह रहा है, बाहर निकाला ही नहीं' – ऐसा एक बार दृष्टि में ले ले तो तमाम झगड़ा निपट जावे।

जब तक निर्वाण नहीं होता, तब तक भावलिंगी मुनि भी ध्यान और अध्ययन में लगे रहते हैं, उसी प्रकार 4-5 गुणस्थानी जीव भी। तब फिर अज्ञानी जीव को तो जब तक धर्म की प्राप्ति न हो, दिन-रात एक कर देना चाहिए। बात समझ में आती है परन्तु उतरती नहीं – अरे भाई! तू उतारता नहीं, झूठ बोलता है। लौकिक में जरा सी बात से सारी बातें समझ में आ जाती हैं, यहाँ (धर्म में) क्यों नहीं? एकमात्र रुचि का फेर है।

मेरा जयपुर जाने का अभी निर्णय नहीं है।

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और जैन प्रश्नोत्तरमाला तीनों भागों पर विशेष जोर रखें। छहढाला की पहली चार ढाल अपने पाठ में रखें तो ठीक रहेगा। यहाँ के सब महानुभाव आप सबको याद करते हैं, जयजिनेन्द्र कहते हैं। (यह मैंने अपनी तरफ से ही लिख दिया है, उन्होंने कुछ नहीं कहा है।)

आप सबको धर्म की प्राप्ति हो – ऐसी भावना भाता हूँ, लेकिन मेरी भावना से आपमें कुछ नहीं होगा, आप अपने में दृष्टि देवें तो कार्य होगा। जब ज्ञानी को तीर्थङ्करगोत्र का बन्ध होता है, तब सब जीवों को धर्म की प्राप्ति हो – ऐसी भावना होती है। वह विचार भी भव बढ़ानेवाला, दुःख का कारण है।

समयसारजी की 373 से 382 तक की गाथाएँ देखने की कृपा करें। अपूर्व बात है।

छहढाला की तीसरी ढाल का पहला दोहा ही गजब का है। वह पहला दोहा ही तीसरी ढाल में समझाया है।

अपनी समझ के बिना नौ तत्त्वों का ज्ञान, छह द्रव्यों का ज्ञान भी मिथ्यात्व है – ऐसा कलश टीका में आया है।

केवलज्ञान को स्वीकार करते ही मिथ्यात्व का अभाव हो जाना चाहिए। वास्तव में जिसने केवलज्ञान को स्वीकार किया, सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, वह ही जैन है।

जिनदेव, देह-देवालय में विराजमान हैं परन्तु जीव, ईंट-पत्थरों के देवालयों में उनके दर्शन करता है – यह मुझे कितना हास्यास्पद मालूम होता है। यह बात ऐसी ही है, जैसे कोई मनुष्य, सिद्ध हो जाने पर भिक्षा के लिए भ्रमण करता है।

– **श्री योगीन्दुदेव**

जैनकुल पाने पर भी, जैसे असैनी जीव अपना समय खोते हैं, ऐसा खोना उचित नहीं है। रुपया -पैसा में कितनी सावधानी रखता है, वैसी आत्मा में नहीं रखता। व्यापार जैसी रुचि अपने में रखे तो तुरन्त कल्याण हो जावे।

आपका समागम चल रहा है, अच्छी बात है। अनन्त-अनन्त गुणों का समागम का ज्ञान-श्रद्धान -आचरण एक बार हो जावे तो देखो फिर क्या होता है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

सोनगढ़

15-11-1971

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीमान् आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

समयसार शास्त्र अब की बार कलश के बीच में अन्वयार्थ देकर छापा है, उसकी कीमत 7.50 है। आपको 50 श्री समयसारजी किशनगढ़ से सीधे भेजने को लिख दिया है।

मेरा विचार अब कहीं जाने का नहीं है, क्योंकि परमार्थ बात सुनने के लायक जीव विरले ही हैं; वर्तमान में वास्तविक बात सुनना भी दुर्लभ है। यहाँ पर नियमसार चल रहा है, और नाटक समयसार पूर्ण होकर श्री समयसारजी शुरु हो गया है। पंचम काल में अमृत वर्षा चल रही है। अज्ञानी जीव बाहरी क्रियाओं में शुभभावों में सन्तोष मान रहे हैं। यहाँ पर गुरुदेव के प्रवचनों के अलावा, हमारा प्रोग्राम पाँच बार चलता है, जिसमें मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार, नियमसार, प्रश्नोत्तरमाला चल रही है।

एकमात्र अपने स्वभाव के आश्रय से ही सम्यक्त्व की प्राप्ति, वृद्धि, पूर्णता होती है।

अभी जैसे शादी होने पर आनन्द आवेगा, तब बीस हजार खर्चता है, चाहे

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

बीच में स्त्री मर जावे या आप; उसी प्रकार अपनी आत्मा की महिमा आवे कि कारण-कार्य मेरे में ही भरा है, उसी में से शान्ति आवेगी, इतना भरोसा अज्ञानियों को नहीं है।

स्वयं भगवान और दर-दर का भिखारी आश्चर्य है!

आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, उसका विश्वास लाओ तो शान्ति आवे।

सब भाई-बहिनों को जयजिनेन्द्र!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

सोनगढ़

दिनाँक 24-1-1972

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीमान् आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

स्त्री अलग, मकान अलग है, शरीर अलग है। क्या इनको अलग मान लिया है? नहीं माना। क्योंकि जैसे आग मैं हाथ देवेंगे तो जल जावेगा, क्या इस प्रकार अलग माना है। विचारो।

आत्मा, त्रिकाली है, ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है - ऐसा विचार तो किया। यह तो सब समाचारपत्र के समान रहा। ज्ञानवाला आत्मा कहते ही अपने पर दृष्टि आवे तो तत्त्व का अभ्यास किया, अन्यथा नहीं।

जिस प्रकार दुकान का ख्याल रहता है, नफा-टोटे का ज्ञान रहता है, क्या ऐसा आत्मा का ध्यान है? क्या रुपया कमाने के समय टाईम का ध्यान रहता है? नहीं, परन्तु आत्मा के विचार के लिए तो समय मुश्किल से निकलता है। विचारो।

भ्रमण का अभाव क्यों नहीं होता? ज्ञेयपदार्थों में अपनेपने का भाव होने से।

जिस भगवानात्मा के केवल स्मरणमात्र से भी ज्ञानरूपी तेज प्रगट होता है, अज्ञानरूपी अंधकार का विनाश होता है तथा कृतकृत्यता अचानक ही आनन्दपूर्वक अपने मन में प्रगट हो जाती है, वह भगवानात्मा इसी शरीर में विराजमान है, उसका शीघ्रता से अन्वेषण करो। दूसरी जगह क्यों दौड़ रहे हो?

- आचार्य पद्मनन्दि

हमारे पास आत्मा है, ऐसा हम जानते हैं, तब हमारी दृष्टि क्यों नहीं आती ? माना ही नहीं कि हम आत्मा है, कहने में माना है।

आपने लिखा – हम बाजी हार गये – क्या व्यापार में कभी ऐसा कहेगा हम बाजी हार गये ? कभी नहीं। जब तक मृत्यु नहीं होती है, उसमें बराबर सावधानी रखता है, और यहाँ कहे हम बाजी हार गये आश्चर्य है। मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 331-15 लाईन छोड़कर पढ़ो। कार्य की सिद्धि का यही उपाय है।

आप शास्त्र पढ़ते हैं परन्तु अपने साथ नहीं लगाते, इसलिए अनुभव नहीं होता है। अरे! अनुभव तो पर्याय है, तुम तीन लोक के नाथ हो – जरा विचारो। अनुभव, अनुभव की क्या बात है – जिसमें अनन्त सुख-दर्शन भरा है, जरा उसका विश्वास तो लाओ। कारण-कार्य मेरे में हैं, अभी मेरा (आत्मा का) विश्वास नहीं। जिस समय विश्वास आवेगा, तभी कल्याण होगा।

देखो, नियमसार पृष्ठ 102 कलश 92 वाँ जरा गौर से पढ़ो।

विभावपरिणमन कैसे छूटे ? विभावपरिणमन रहित स्वयं भगवान है, उसकी ओर देखने से।

कोई निन्दा करता है, वह स्वयं अपनी करता है। 'जिसमें जितनी बुद्धि है, उतना देय बताय; बाका बुरा ना मानिये, और कहाँ से लाय॥' जो जीव समझने के लिए विरोध करते हैं और समझना चाहते हैं, वह तो अच्छा है परन्तु वर्तमान में तो नीचा दिखाने की प्रवृत्ति है। मेरे विचार में तो हमें उन गरीबों की ओर ध्यान न देना चाहिए, वह तो दुःखी है। यदि विरोध अज्ञानी न करेगा तो कौन करेगा ? भगवान के समवसरण में जाने के बाद भी जीव विरोध करते हैं। विचारो – कोई विरोध करे – उसे अरहन्त, सिद्ध क्या करते हैं ? जानते हैं। तो भाई! तुम भी जानो और देखो, तब तो भगवान के अनुयायी हो।

संसार में कोई वस्तु – कोई शुभभाव इष्ट-अनिष्ट नहीं है, मात्र अपनी एक समय की मान्यता है, वह अनादि अनन्त स्वभाव की दृष्टि करे तो उसका अभाव हो।

संयोग आपसे नहीं कहते, हमें भोगो परन्तु मूर्ख अपनी बुद्धि से स्वयं पागल बनता है। मैं अकेला अपनी पर्याय को करता हूँ, पर से सम्बन्ध नहीं – ऐसा ज्ञान तो सम्यग्दर्शन होने पर होता है, इससे पहले तोते के समान है।

आप स्वयं बुद्धिमान हो – अपनी त्रिकाली की ओर दृष्टि दो, तुरन्त

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

कल्याण होगा।

शरीर में काँटा लग जाये, उतनी चिन्ता आत्मा की नहीं है; इसलिए कल्याण नहीं होता।

शास्त्रों में एक-एक पद पर मोक्ष की बात है, अज्ञानी दृष्टि में नहीं लेता है।

आपके पास तो सब कापियाँ लिखी हैं, अपने में लगाओ तो कल्याण होगा।

किसी से वाद-विवाद न करो, सहधर्मी से भी वाद-विवाद हानिकारक है।

आप परदेश में गये, वहाँ से पाँच लाख रुपया कमाया। घर पर आकर विचारो-आराम से भोगोगे। उसी प्रकार शास्त्रों में तो जितनी बात है, उतनी आपके सामने हैं। शास्त्र बतलाता है, शास्त्र अन्दर नहीं घुसेगा; अन्दर तो स्वयं जाना पड़ेगा।

जैसे चौथे काल में भगवान की दिव्यध्वनि खिरती थी, वैसे वर्तमान में पूज्यश्री की खिर रही है। पात्र जीवों को पंचम काल ही चौथा काल है। सर्वज्ञ भगवान का विरह भी नहीं, ऐसे समय में बाजी हारे-आश्चर्य!!

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र! मैं 25-1-72 को अहमदाबाद जा रहा हूँ। मन्दिरजी में ठहरूँगा, देखो, कब वहाँ से निकलना होता है, विचार तो 15 दिन का है।

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

निश्चय से देखा जाये तो यह मेरा आत्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित शुद्ध है। मेरा आत्मा ही शुद्धात्मा है, इस देह के भीतर विराजमान है, तथापि मूर्तिक-देहरहित, अमूर्तिक है। यह मेरा आत्मा ही निश्चय से परमात्मा है।

– **श्री तारणस्वामी**

बुलन्दशहर

दिनाँक 16-3-1972

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

मैं 15.3.72 को बुलन्दशहर आ गया हूँ। अहमदाबाद से सावली, तलोद, हिम्मतनगर तीन जगह चला गया था, सो जानना।

आप लोगों की स्वाध्याय सावधानीपूर्वक चल रही होगी।

सब जगह, चाहे करोड़पति हो, गरीबपति हो, अपने को समझे बिना दु:खी-दु:खी है। वर्तमान में यह बात, जिसका संसार का किनारा निकट आया है, उसे ही यह बात बैठेगी। बात है आसान, परन्तु अपनी मूर्खता से मुश्किल बना दी है। आप तो होशियार हैं, आपको अपनी ओर देखकर शान्ति प्राप्त करके सुख प्रगट करना चाहिए।

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

पुनश्च :-

व्यवस्थित परिणमन ही प्रत्येक वस्तु में है तो फिर आत्मा उसमें फेरफार कर दे, यह बात भी नहीं रहती; मात्र ज्ञायकपना ही रहता है, इसलिए तू अपने ज्ञायकपने का निर्णय कर और पर को बदलने भी बुद्धि छोड़ - ऐसा भगवान का उपदेश है। ज्ञायक मैं हूँ और क्रमबद्धपर्याय का निर्णय, सब एक साथ होते हैं।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

सिद्ध भगवान के समान ही निश्चय से मेरा आत्मा कर्ममलरहित शुद्ध है, शुद्ध स्वभाव में तन्मय है तथा रत्नत्रयस्वरूप है; संसार के भ्रमण से रहित है, यह आत्मा ही वास्तव में परमात्मा है, परम वीतराग व निर्दोष है।

– **श्री तारणस्वामी**

दिनाँक 20-5-1972

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

संसार कोई परवस्तु में नहीं है, अपनी अनादि से एक-एक समय की भूल में संसार है। अपने संसाररहित स्वभाव की ओर जरा दृष्टि करे तो मोक्ष का पथिक बन जाता है। अपने हाथ में संसार है, अपने हाथ में मोक्ष है। किसी भी परपदार्थों का, द्रव्यकर्मों का, संसार और मोक्ष से सम्बन्ध नहीं है। सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र !

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

बुलन्दशहर

11-3-1970

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

अरे भाई ! बाहरी क्रिया करो, अणुव्रत पालो–किस शास्त्र में है ? हमको दिखायी नहीं देता है। द्रव्यकर्म-नोकर्म से अपनी आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है – इतनी बात का निर्णय करे तो स्वभाव का आश्रय हो और राग-द्वेषरहित अपनी आत्मा अनुभव में आवे।

आप अपने कार्य में लगे रहो, कामयाबी निश्चित होवेगी। वर्तमान में यह बात किसी बिरले को ही समझ में आवेगी। इसलिए किसी के चक्कर में न पड़कर, अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

आप सबको धर्म की प्राप्ति हो – ऐसा चाहता हूँ।

प्रश्नोत्तर लिखना।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 16-2-1973

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीमान् आत्मार्थी बन्धु - धर्म की प्राप्ति हो।

रत्नत्रय युत जीव जो, उत्तम तीर्थ पवित्र।
हे योगी शिव हेतु ए, अन्य न तन्त्र न मन्त्र॥83॥

रागरहित-धुनरहित तू है - ऐसा जानकर, अपने को ध्यावे तो धुन को व्यवहार कहा जावेगा। विचारो - ऐसी धुन तो द्रव्यलिंगी ने कितनी की होगी। यदि सच्ची धुन हो तो तुरन्त कल्याण होना चाहिए। ऐसी स्थिति में ज्ञाता-दृष्टा रहना, पात्र जीव का कर्तव्य है और क्या करूँ, यह प्रश्न ही उल्टा है क्योंकि जो तू है, जो तेरा है, उसे जान।

द्रव्यलिंगी मुनि एकान्त जंगल में गया परन्तु धर्म नहीं हुआ। दुकान पर बीस ग्राहक एकदम आवे, बाजार में हल्ला हो रहा हो, उस समय क्या करोगे? अपना त्रिकाली स्वभाव ही एकान्त है। सातवें नरक में सम्यक्त्व प्राप्त किया, वहाँ तो चारों ओर हाहाकार है। जो कहता है - एकान्त में बैठकर घोलन करूँगा, यह बात भूल भरी है। अभी मानसिक ज्ञान में भूल है; इसलिए एकान्त में बैठने की बात आती है। आप विचार करो तो हर समय एकान्त है। कौन तेरी सुनता है? तू स्वयं ही पर में उलझा है। एकान्त में बैठने पर और ज्यादा विचार सतावेंगे।

कर्ताकर्म अधिकार की 69-70 एक ही गाथा सम्यग्दर्शन-केवलज्ञान को प्राप्त कराती है, उसमें तो साक्षात् अमृत की घूँट है। यहाँ पर 12 तारीख से आया था, यही गाथा चल रही है, शायद आगे के दिन भी चले, पता नहीं है।

आप कहते हैं और कार्य की मुख्यता नहीं है परन्तु मैं कहता हूँ अभी और कार्य की ही मुख्यता है। जब अपनी मुख्यता होगी, तभी धर्म प्राप्त हो जावेगा। एक समय भी अपनी मुख्यता नहीं की। हर प्रकार के पर की मुख्यता है।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

यह आत्मा, कर्मों के बन्धन से सहित होने पर भी, कर्मबन्धन से रहित है; राग-द्वेष से मलिन होने पर भी, निर्मल है और देहधारी होने पर भी, देह से रहित है; इसलिए आचार्य कहते हैं कि आत्मा का स्वरूप आश्चर्यकारी है।

– आचार्य पद्मनन्दि

तलोद, 13-3-1973

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

अरे भाई ! अपनी आत्मा को जाने बिना जीवन, तिर्यञ्च समान है; इसलिए पात्र जीव को स्व-पर के विभाग से अपनी जानकारी अति आवश्यक है।

(देखो, श्रीप्रवचनसार, गाथा 86, 87, 89, 90)

यहाँ पर यथासम्भव आनन्द है; आप सबको धर्म की प्राप्ति हो - ऐसी भावना है।

अरे भाई ! समयसार कलश में लिखा है - केवलज्ञान आसान है, तू क्या सम्यग्दर्शन की रट लगाता है ! अपने ओर दृष्टि कर, तुरन्त कल्याण होगा।

(श्रीसमयसार, कलश 33-34)

कैलाशचन्द्र जैन

तलोद, 3-4-1973

श्री वीतरागाय नमः

श्रीमान् आत्मार्थी बन्धु

जयजिनेन्द्र !

अहमदाबाद और जयपुर का प्रोग्राम कैन्सिल करके 12-3-73 को पूज्यश्री के चरणों में सोनगढ़ पहुँच जाऊँगा। यहाँ से 10 को चलूँगा सो जानना। पूज्य गुरुदेव सोनगढ़ में 27-4-1973 तक रहेंगे, बाद में कलकत्ते जावेंगे, सो मैं 26या 27 को वहाँ से रवाना होकर, बुलन्दशहर पहुँच जाऊँगा - ऐसा विचार है।

मैं एक, शुद्ध, ममत्वहीन, ज्ञान-दर्शन से पूर्ण हूँ - ऐसा निर्णय करते ही धर्म की शुरुआत हो जाती है। फिर जैसे-जैसे अपने में एकाग्र होता है, वृद्धि करके पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है। तुम स्वयं धर्मस्वरूप हो - ऐसा एक बार निर्णय तो करो, शान्ति तुम्हारे पास है।

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 29-3-1973

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

ज्यों रमता मन विषयों में, त्यों हो आतम लीन।
शीघ्र मिले निर्वाणपद, धरे न देह नवीन॥

आत्मार्थी बन्धु

धर्म की प्राप्ति हो।

तत्त्वनिर्णय क्या है ? मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ तथा बाकी अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, एक-एक लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्यों से सम्बन्ध नहीं हैं - ऐसा मानकर, जानकर निर्विकल्प होना, यह ही तत्त्वनिर्णय है। अपने त्रिकाली (स्वभाव) पर दृष्टि जाना ही, तत्त्वनिर्णय है। शास्त्र के अनुसार बोले, जाने, कहे - यह तो मिथ्यात्व है। मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो - आदि विकल्प, राग है। अभेद (स्वभाव) पर दृष्टि जाते ही सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होना, यह अलग बात है और करूँ-करूँ, प्राप्त करूँ, यह विपरीतता है। वर्तमान पर्याय, स्वभाव पर जाना ही पुरुषार्थ है। ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी तत्त्वनिर्णय नहीं करता है। जिनवर के कहे व्रतादि पालने पर तथा शास्त्रों का विशेष उघाड़ होने पर भी तत्त्व निर्णय नहीं है। सम्यक्त्व होने पर तत्त्वनिर्णय नाम पाता है।

भगवान आत्मा, अनादि-अनन्त है। एक-एक समय करके अनादि से अज्ञानी, परद्रव्यों में, विकारीभावों में अपनेपने की बुद्धि कर रहा है, यह रोग है। असंज्ञी तक तो कुछ भान ही नहीं है और संज्ञीपना प्राप्त होने पर भी, दिगम्बरधर्म, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का सम्बन्ध होने पर भी, रागरहित स्वभाव दृष्टि में नहीं लिया तो अनर्थ है। पूर्व पुण्य का कारण तो देव-गुरु-शास्त्र का सच्चा सम्बन्ध मिलता है परन्तु ऐसा होने पर पुरुषार्थ ना किया, अपने पर दृष्टि न दी, अर्थात् अपने को सार ना किया तो मनुष्य जन्म समाप्त होने पर, निगोदादि की प्राप्ति होगी।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, ऐसा अज्ञानदशा में मानने पर भी, पर के प्रति दृष्टि होने से आत्मज्ञान उदित नहीं होता है। इसके लिए निरन्तर सूक्ष्म रीति से भेदविज्ञान ही एकमात्र उपाय है - (1) कर्ता-कर्म मात्र एक द्रव्य में होता है, दो में नहीं-अभी तो इतने निर्णय में भी भूल है।

(2) ज्ञानी का कर्ता-कर्म, शुद्धपर्याय के साथ कहो तो कहो;

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

(3) कर्ता–कर्म का विकल्प भी आत्मा में नहीं है;

(4) अज्ञानदशा में अज्ञानी को शुभाशुभभाव का कर्ता कहो परन्तु द्रव्यकर्म, नोकर्म का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं है। बस इतना ही करना है कि आस्रव–बन्ध अलग, तू अलग; उसी समय कल्याण हो जावेगा। विचार तो राग है। पहिले अज्ञानदशा में विचार होता है परन्तु अनुभव–काल में विचार नहीं रहता है। छहढाला–छठी ढाल में देखो –

'निज परम पैनी सुबुद्धि छैनी, डारि अन्तर भेदिया' – आदि यही दशा चौथे गुणस्थान में होती है। मुनि की अपेक्षा कथन है। छहढाला के यह छन्द विशेषरूप से देखो।

तू हितस्वरूप ही है – इतना निर्णय ही करना है। पर में तो कुछ करने–कराने की बात ही नहीं। शुभाशुभराग, विकार है। अब रहा क्या ? अपनी ओर दृष्टि करते ही पर्याय में हितपना प्राप्त हो जाता है।

'सत् द्रव्य लक्षणम्। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत्' यह महामन्त्र है।

आज दो दिन से प्रमेयत्वगुण चल रहा है। अरे भाई! द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म ज्ञेय हैं, तू ज्ञायक है; इसके अलावा और किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है – ऐसा माने तो पर्याय में भगवान बन जावे।

आप छहढाला पर पूज्यश्री का प्रवचन पढ़ने की कोशिश करें। दूसरी ढाल पर आपके पास प्रवचन हैं, उसमें बहुत बातों का समाधान है।

सौ बात की बात यही है कि तू चैतन्य है, बस इतनाा मानते ही बेड़ा पार है।

जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा मानते ही सारे दु:ख का अभाव हो जाता है।

अपनी आत्मा को 'सार' करते ही वीतराग–विज्ञानता की प्राप्ति हो जाती है।

अपने घर में आने पर, सब ज्ञानियों का आदर है; अपने अन्दर ना आवे, सब ज्ञानियों का अनादर है।

पर में करूँ... करूँ का भाव दु:ख है; अपने में स्थिरता, वह सुख है। जब जीव को यह निर्णय हो जाता है कि मेरा पर से सम्बन्ध नहीं है तो उसी समय दृष्टि अपने स्वभाव पर आ जाती है।

पर से तो सम्बन्ध है नहीं परन्तु ज्ञानियों ने दया, दान, पूजादि विकारीभावों

यह आत्मा चिदानन्दमयी परमात्मा के स्वभाव के समान है, ऐसी भावना करने से कर्मों का क्षय हो जाता है, जैसे – सिंह को देखते ही हाथियों के समूह भाग जाते हैं, दृष्टि से बाहर हो जाते हैं।

– **श्री तारणस्वामी**

को विरुद्ध स्वभावी, अनित्य, अशरण, अध्रुव, वर्तमान में दु:खरूप, भावी में दु:खरूप कहा है। ऐसा जानकर अविरुद्ध, स्वभावी भगवान आत्मा जो नित्य है, ध्रुव है, शरणरूप है, वर्तमान में सुखरूप; और यदि सुखरूप हैं, तो उसकी दृष्टि करना प्रत्येक जीव का मुख्य कर्तव्य है। धर्म, मात्र अपने में, अपने ही द्वारा प्रगट होगा – पर का जरा भी हस्तक्षेप नहीं है।

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र।

कैलाशचन्द्र जैन

सांवली , 20-11-1972

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

जो द्रव्य उपजे जिन गुणों से, उनसे जान अनन्य वो।
है जगत में कटकादि, पर्यायों से कनक अनन्य ज्यों॥

(श्रीसमयसार, गाथा 308)

आत्मार्थी बन्धु,

धर्म की प्राप्ति हो।

अपने आप को धर्मस्वरूप माने, श्रद्धान, आचरण करे तो पर्याय में धर्म की शुरुआत होकर, वृद्धि और पूर्णता हो।

समयसार, गाथा 308से 311 की टीका में 'प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं। इसी प्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं।' यह महामन्त्र है। कहने का तात्पर्य यह है – प्रत्येक जीव और अजीव अपने -अपने परिणामों से अनन्य है और वह परिणाम क्रमबद्ध / क्रमनियमित हैं – इतना मानसिक ज्ञान में निर्णय करके, स्वभाव की दृष्टि करे तो तुरन्त कल्याण होता है।

यह ही महामन्त्र मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 में लिखा है कि 'जैसा पदार्थों का स्वरूप है, वैसा श्रद्धान हो जावे तो सर्व दु:ख दूर हो जावें।'

तो प्रश्न होता है – पदार्थों का स्वरूप कैसा है ? उत्तर — 'अनादि-निधन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती' यह महामन्त्र है।

गाथा 366 से 371 तक की टीका में लिखा है - (आठ लाईन छोड़कर) 'आत्मा के धर्म, दर्शन -ज्ञान और चारित्र, पुद्गलद्रव्य का घात होने पर भी नष्ट नहीं होते। इसका अर्थ यह है कि जिस जीव को आत्मा के धर्म, अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, श्रावकपने की प्राप्ति, मुनिदशा की प्राप्ति, श्रेणी की प्राप्ति आदि जो शुद्धि है, वह आत्मा के धर्म हैं। उनका (शुद्धि का), पुद्गलद्रव्य का घात होने पर भी नाश नहीं होता, अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र का राग न हो, बाहरी क्रिया न हो, शरीर खराब हो, बारह अणुव्रतादि न हो, मुनिदशा के 28मूलगुण न हो, अर्थात् भूमिकानुसार राग, शरीर की क्रिया आदि न होना, यह पुद्गलद्रव्य का घात है। तात्पर्य यह कि सम्यग्दर्शनादि का सम्बन्ध, मात्र अपने त्रिकाली भगवान के आश्रय से ही है; बाहरी क्रिया, शुभभावों से नहीं है।

आगे, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात, अर्थात् मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र होने पर, पुद्गल का घात न हो, अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो, बाहरी देव-गुरु-शास्त्र का राग हो - शरीर ठीक हो, बाहरी अणुव्रतादि हों, महाव्रतादि हों - उससे सम्बन्ध नहीं है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक....' अर्थात्, मिथ्यादर्शनादि का भी बाहरी क्रिया से सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि द्रव्यलिंगी मुनि को बाहरी क्रिया होने पर, मिथ्यादर्शनादि होते हैं; इसलिए हे आत्मा! तू एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान की ओर दृष्टि कर और बाहर के हूँ हाँ से विरक्त हो।

समयसार, कलश 34 देखो, लिखा है - हे भव्य! तुझे व्यर्थ के कोलाहल करने से क्या लाभ? इसे भावार्थ सहित पढ़ो।

मानसिक ज्ञान में आये- सामने कुआँ है, हम गिर जावेंगे तो मर जावेंगे, तो क्या वह गिरेगा? कभी नहीं। उसी प्रकार आपने लिखा-मार्ग जो है, वह ज्ञान के उघाड़ में खूब आता है और तीन काल में स्व के आश्रय बिना, सुख होनेवाला नहीं है। क्या जैसे सामने कुआँ है, ऐसे ज्ञान में आता है? जरा विचारो।

यह कार्य सहज है, करूँ-करूँ रूप नहीं है। जिस समय पदार्थों की स्वतन्त्रता का निर्णय - कार्य अपनी योग्यता से ही होता है-होगा, उसी समय मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है। समझो, समझो! भाई सरल है, सरल है।

मङ्गल समर्पण

हे योगीश्वर! निश्चयनयकार विचारा जावे तो यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बन्ध-मोक्ष को करता है, अर्थात् शुद्धनिश्चयनय से, बन्ध-मोक्ष से रहित है - ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

- आचार्य योगीन्द्रदेव

जिन, जिनवर, जिनवर वृषभों ने एकमात्र अपने आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति बतायी है।

जो रूपीकार्य है, उनसे आत्मा का सर्वथा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, लेकिन अज्ञानी को यह बात मुश्किल मालूम होती है।

एक-एक समय की पर्याय स्वतन्त्र है, उसका कारण दूसरा कोई नहीं है - ऐसा ध्यान में आते ही दृष्टि अपने भगवान पर आ जाती है।

कलश 193 में सर्वविशुद्ध अधिकार का सार है। सर्व विशुद्धि, अर्थात् अकेला ज्ञायक भगवान कैसा है - यह बताया है।

यह दो हजार आदमी की आबादी का गाँव है,.... सब अमीर-गरीब स्वाध्याय में रस लेते हैं। यहाँ बिजली भी नहीं है, नल भी नहीं है परन्तु धर्म की रुचि सबको है लेकिन घर में आवे तो सच्ची रुचि कहलावे।

सब भाई-बहिनों को यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

दु:ख एकमात्र एकत्वबुद्धि का है, एक समय का है। तू अनादि-अनन्त भगवान है, यह बात बिरले जीव ही समझ सकेंगे। अब देर करना ठीक नहीं है।

अपनी ओर दृष्टि करते ही संसार है ही नहीं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 27-11-1972

आत्मार्थी बन्धु,

सादर जयजिनेन्द्र!

प्रात: काल पाँच बजे स्वाध्याय करते-करते यह बात चल रही थी तो आपको भी यह बात लिखने का विकल्प आया - अब पाँच बजे हैं।

जैसे अरिहंत भगवान को तीर्थङ्करप्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में आता है, वहाँ पर समवसरण की रचना तथा नौ घण्टे छह मिनिट चार बार दिव्यध्वनि छूटती है। क्या भगवान उसके कर्ता-भोक्ता हैं? बिल्कुल नहीं; उसी प्रकार चौथे गुणस्थान में स्त्री-पुत्रादि, व्यापार अशुभभाव होते हैं, विशेषरूप से

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि को 96हजार स्त्रियाँ हों; छह खण्ड का राज्य हो, लड़ाई भी करता दिखे, परन्तु अरे भाई! वह ज्ञानी तो सिद्धदशा जैसा कार्य करता है (अर्थात्, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।) इसलिए हे भाई! तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करो।

जैसे तिजोरी में सौ टंच सोना रखा है और कुछ सोना मिला-जुला रखा है, जौहरी की दृष्टि में तो दोनों सौ टंची ही है। उसी प्रकार सिद्ध की दृष्टि, अरहन्त की दृष्टि, साधक की दृष्टि, समान है; मात्र प्रत्यक्ष -परोक्ष का भेद है।

चौथा गुणस्थान होते ही... अरे! हो गया सिद्ध - यह बात अज्ञानियों को पचना मुश्किल है। *(देखो, समयसार कलश 198)*

अरे भाई! क्या बताया जावे? जैसा सिद्ध भगवान अब जान रहे हैं, वैसा चार गुणस्थानी जानता है। चारित्र की अपेक्षा जो अन्तर है, उस दोष को ज्ञानी अपना मानता नहीं है। जैसे स्वभाव में रमता जाता है, दोष मिटता जाता है। वाह वाह ज्ञानी का क्या कहना! अरे भाई! तुम भगवान हो! जरा दृष्टि उघाड़ो! मात्र मान्यता का फेर है। बात ज्ञानी के हृदय में है।

देखो, देखो! एक समय की दृष्टि / मिथ्यात्व के बदलते ही भगवान बन जाता है, जरा करके देख, सहज है सरल है। इसमें कुछ करना धरना नहीं है। जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा ही सिद्ध-अरहन्त जानते हैं, वैसा ही चौथे गुणस्थान से जानता है।

अहा! बलिहारी गुरु कहान की, जो आज पात्र जीवों को अमृत परोस रहे हैं। पूज्य गुरुदेव ने वर्तमान में तीर्थङ्कर जैसा कार्य किया है, उसकी कीमत ज्ञानी जानते हैं।

मुझे मात्र आपको ही लिखने का बार-बार ध्यान कभी आ जाता है। वर्तमान में सत्य बात सुनना भी दुर्लभ है। **पूज्य गुरुदेव के चरणों में अगणित नमस्कार।**

कैलाशचन्द्र जैन

हे भव्य! मैं तुझे एक वस्तु समझाता हूँ, अत्यन्त प्यार से उसे तू सुन और समझ - 'यह आत्मा स्वयं नित्य सत्-चित् आनन्दस्वरूप है, उसे तू कभी भूल मत।'

- श्री नैमिश्वर

दिनाँक 29-11-1972

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

जगत के द्वन्द्व-फन्द के विकल्पों को छोड़, मैं बोधस्वरूप भगवान हूँ - ऐसी भावना से परमात्मपद की प्राप्ति होती है। नौ प्रकार के पक्षों के आश्रय से नहीं।

जो बिचारा अपनी आत्मा को नहीं जानता, वह सिद्धादि पञ्च परमेष्ठियों को, श्रावक, अव्रती सम्यग्दृष्टि किसी को नहीं जानता है। जो अपने को जानता है, वह सबको जानता है, क्योंकि अपना अनुभव होने पर, सबका पता चल जाता है, यह नियम है।

ज्ञानी को कोई शत्रु-मित्र दिखता नहीं, क्योंकि विश्व में कोई पर, शत्रु-मित्र है ही नहीं। वास्तव में मोह-राग-द्वेष शत्रु है, अपने स्वभाव का आश्रय ले तो पर्याय में भगवान बने और पर्याय में संवर, निर्जरा, मोक्षरूप मित्रता की प्राप्ति हो।

ज्ञानी जीव, अपने को तथा सर्व जीवों को शुद्ध बुद्ध ज्ञानस्वरूप जानता है, उसमें शत्रु-मित्रपना दिखता नहीं; इसलिए ज्ञानी को निरन्तर समाधि वर्तती है।

अरे भाई! 'मैं बोधस्वरूप हूँ' - ऐसा स्वसंवेदन द्वारा बहिरात्मपने को छोड़, अन्तरात्मा बन और अन्तरात्मा होकर समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित परमात्मा बनो - ऐसी भावना भाता हूँ।

अपने अन्दर ही सिद्ध दशादि हैं; कहीं बाहर नहीं है। एक बार निर्णय कर-शान्ति तेरे पास है। अब 10.5 बजे हैं, स्वाध्याय करते-करते विकल्प आ गया, यह पुराना कार्ड किताब में लगा था तो लिख दिया।

प्रश्न - एक-अनेक को जानने से क्या लाभ है?

उत्तर - गुण-पर्याय जो अनेक हैं, उनकी दृष्टि गौण करके, एक स्वभाव पर दृष्टि दे तो धर्म की शुरुआत, वृद्धि, पूर्णता की प्राप्ति हो, तब एक-अनेक अनेकान्त को समझा कहा जावेगा।

तू भगवान है, अपने भगवान की ओर दृष्टि करते ही पर्याय में भगवानपना प्रगट होता है।

अरे भाई! बन्ध-मोक्ष रहित अपने स्वभाव को एक बार लक्ष्य में तो ले, तो फिर क्या होता है?

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

बस तू धर्मस्वरूप है, इतना निर्णय कर, शान्ति तेरे पास है।

'अप्पा सो परमप्पा', यह भगवान बनने का मन्त्र है।

सबको जयजिनेन्द्र और सबको धर्म की प्राप्ति हो!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

30-11-1973

आत्मार्थी बन्धु,

धर्म की प्राप्ति हो!

आपका 25-11-73 का पत्र मिला।

प्रश्न - यथार्थ निर्णय कैसे हो?

उत्तर - अरे भाई! तू अकेला है। विचारो-तुम्हारे से किसी का सम्बन्ध सर्वथा नहीं है - ऐसा निर्णय करते ही भगवान का पता चलता है। वर्तमान में अज्ञानी, सम्बन्ध मानता है - है तो उसके साथ भी नहीं। अज्ञानी का सम्बन्ध मात्र राग-द्वेष से है; ज्ञानी का सम्बन्ध ज्ञायक से है। द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध तो अज्ञानी से भी नहीं है। इसमें कोई मन्त्र नहीं पढ़े जावेंगे।

जब तक भूतार्थस्वभाव का आश्रय न ले, चाहे ग्यारह अंग का पढ़ा लिखा हो; सम्यक् निर्णय नहीं है परन्तु अज्ञानदशा से ज्ञानदशा में आने पर, भूतनैगमनय से सम्यक् निर्णय कहा जा सकेगा।

समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक को भी यथार्थ ग्रन्थ कब माना? जब भूतार्थ का आश्रय लिया। क्या भूतार्थ कहीं दूर है? तू स्वयं भूतार्थ है। पानी में मीन प्यासी वाली बात हो रही है। जरा चैतन्य चक्षु अपनी ओर कर।

पर्याय में पामरता तो एक समय की है; तू तो अनादि अनन्त है। पर्याय में पामरता का ज्ञान भी भूतार्थ का आश्रय लेने पर ही चलता है।

(देखो, श्रीप्रवचनसार, गाथा 126)

पर के दर्शन अनन्त बार कर-करके मर गया, एक बार अपने दर्शन करे तो सब सिद्धों, पंच परमेष्ठियों के दर्शन हो गये। तू स्वयं भगवान है देख!

पात्र जीवों को पंचम काल नहीं है, चौथा काल है, भगवान का विरह नहीं है।

मङ्गल समर्पण

जीवद्रव्य क्वचित सद्गुणों सहित विलसता है / दिखायी देता है, क्वचित् अशुद्धरूप-गुणों सहित विलसता है, क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है, और क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी, जो इन सबसे रहित है - ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ, भाता हूँ।

- आचार्य पद्मप्रभमलधारिदेव

चौथा काल हो, पंचम काल हो; भूतार्थ के आश्रित ही धर्म की प्राप्ति होगी – यह नियम है।

सांसारिककार्य में निर्णय करने में देरी कितनी लगती है? जरा भी नहीं। यहाँ की देरी बड़ी खतरनाक है। अरे! करना क्या? मात्र तू ज्ञायक है, तू ज्ञायक है।

आत्मा को परद्रव्यों और परभावों का कर्ता-भोक्ता नहीं है, मात्र ज्ञायकपना है – ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं।

संसार के कार्यों में दिन-रात लगा है, जैसे उनमें से सुख मिलेगा – आश्चर्य है!!

जिसका तेरे में कभी अभाव न हो – ऐसे ज्ञानादि गुणों के अभेद पिण्ड की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है।

जैनदर्शन का सार = भूतार्थ आश्रित धर्म की प्राप्ति, पूर्णता है। भूतार्थ के आश्रित ही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, श्रेणी, अरहन्त, सिद्धदशा की प्राप्ति। *(श्रीसमयसार, गाथा 11 तथा 272)*

सबको जयजिनेन्द्र

कैलाशचन्द्र जैन

सोनगढ़, 14-4-1973

श्री वीतरागाय नमः

आत्मार्थी बन्धु,

धर्म की प्राप्ति हो

शान्ति का वेदन हो, वह आत्मा है। जब तक शान्ति का वेदन नहीं है, तब तक अनात्मा है।

एकमात्र अपने को जाने बिना, शास्त्र-पठन, पूजा-पाठ क्या है? जरा विचार करो।

आप सबको लेकर 24 से 27 तक देहली जाना, प्रवचनों का लाभ मिले।

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

अनुभूतिस्वरूप भगवानात्मा, अबाल-गोपाल सबसे अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी, अनादि बन्ध के वश होकर पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' - ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता।

- आचार्य अमृतचन्द्र

दिनाँक, 18-10-1971

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

यहाँ पर नियमसार और समयसार-नाटक चल रहा है। नियमसार बिना गुरुगम समझ में नहीं आ सकता है। अभी तक तो अज्ञानी जीव, गृहीतमिथ्यात्व में पड़े हैं। वर्तमान में यदि अपने आप को नहीं पहचाना तो अनर्थ हो जायेगा। एकमात्र अपने स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि, पूर्णता होती है; पर, विकार, कर्म से नहीं।

आप तो जानकार हो, जानकार को अंधेरे में रहना अच्छा नहीं है। सब भाई और बहनों को जयजिनेन्द्र !

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक, 14-4-1973

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

यहाँ पर अभी नियमसार का प्रवचन पूज्यश्री का हुआ, उसमें कलश 70 में आया है - भव्य जीवों को बन्ध-मुक्तिरहित एक अपना स्वभाव ही उपादेय है - ऐसा जिनदेव फरमाते हैं - ऐसा करते ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

20-3-1974

श्री वीतरागाय नम:

श्री आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

अरे भाई ! तुझे आज तक किसी भी परद्रव्य ने स्पर्शा भी नहीं, तो कोई तुझे दु:ख दे, या सुख दे – यह बात कहाँ रहती है ? तू अनादि-अनन्त अकेला ही रहा है, और अकेला ही रहेगा, इस बात को विचार तो सही, तुरन्त शान्ति का झरना बहेगा। एक बार, निर्णय कर – तू स्वयं सिद्ध भगवान है, उसी समय पर्याय में भगवानपना स्वयमेव प्रगट हो जावेगा।

यह जीव स्वयं अपनी मूर्खता से ही पागल हो रहा है, इसे पागल बनाने में तीन काल-तीन लोक में कोई पदार्थ समर्थ नहीं है और जब यह जीव अपनी ओर दृष्टि करके पर्याय में भगवानपना प्रगट करता है, तब तीन काल-तीन लोक में उसे कोई रोकनेवाला नहीं, अर्थात् पागलपना अपनी ही मूर्खता से है और भगवानपना भी अपने से ही है। ऐसा माने तो तुरन्त भगवानपना प्रगट हो जाता है।

ओ...हो... तीन लोक का नाथ कैसा पागल हो रहा है, बगैर बात के, आश्चर्य है। जबकि तेरा किसी से किसी भी अपेक्षा कोई सम्बन्ध नहीं, जरा विचार तो कर।

भाई ! बहुत हो गयी, बहुत हो गयी, अब देर की क्या आवश्यकता है ? विलम्ब मत कर, यदि विलम्ब किया तो चारों गतियों की हवा खाता हुआ निगोद में जा पड़ेगा।

पात्र जीवों के लिए यह समय चौथा काल है और भगवान का विरह नहीं है। यह समय निकल गया तो पछताना पड़ेगा। 372 गाथा, समययसारजी में नियम किया है कि अन्य द्रव्य से, अन्य द्रव्य-गुण की उत्पत्ति नहीं की जा सकती है। एक बार भगवान की वाणी पर विश्वास तो ला, फिर देख क्या होता है ?

डिब्बी में हीरा रखा है, उसी प्रकार यह आत्मा, हीरे के समान पृथक् पड़ा है, परन्तु अपने आपका पता न होने से मूर्खता खड़ी की है। जरा अपने हीरे की ओर दृष्टि करे तो आनन्द है, आनन्द है, आनन्द है।

पर्याय में मूर्खता ऐसी खड़ी की है कि चौबीस घण्टे कोल्हू के बैल की

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

मङ्गल समर्पण

वीतराग, निर्विकल्प, समाधिरूप, भावलिंग, यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है, इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है, तो भी परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है। भावलिंग साधनरूप है, वह भी परमावस्था का साधक नहीं है।

– आचार्य योगीन्द्रदेव

तरह फिरता हुआ आनन्द मान रहा है। अरे! एक बार बन्ध–मोक्षरहित स्वयं अनादि–अनन्त अकृत्रिम चैत्यालय है – ऐसा निर्णय तो कर। तू महा महिमावान पदार्थ है, उसकी ओर दृष्टि जाते ही, सब पर पदार्थों की महिमा उड़ जाती है, प्रमाण–नय आदि का विचार, पता नहीं कहाँ चला जाता है। स्वयं तेरा भगवान कहीं पर में नहीं है।

जैसे पेट में मल है, उसी प्रकार ज्ञानी, अस्थिरता सम्बन्धी राग को मलरूप, मैलरूप जानते हैं और भगवान आत्मा को पवित्र उज्ज्वल मानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मकल्याण के लिए किसी भी परपदार्थ की, विकारीभाव आदि की किंचितमात्र आवश्यकता नहीं है। मात्र मैं आत्मा हूँ – ऐसे निर्णय की आवश्यकता है। सब भाई–बहनों को यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 15–11–1974

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जहाँ अंश नहीं रागादि का बस वो अहिंसा जानना।
रागादि का हो अंश भी, तो उसे हिंसा जानना॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

(1) भगवान महावीर का सन्देश है कि हे संसार के प्राणियों! यदि सुख चाहते हो तो प्रथम यह निर्णय करो कि अजीवद्रव्यों से तुम्हारा निश्चय–व्यवहार से कर्ता–कर्म, भोक्ता–भोग्यसम्बन्ध नहीं है।

(2) स्पर्शादि की 20 और शब्द की सात पर्यायें, सब पुद्गल की पर्यायें हैं, इन सबमें अपनेपने का भाव आना, निगोद की तैयारी है क्योंकि जैसे कोई स्त्री, दूसरे पति का भाव करे तो उसे कुलच्छनी कहा जाता है, उसी प्रकार जिससे अपना किसी भी अपेक्षा सम्बन्ध नहीं है, उससे सम्बन्ध मानना, यह महान मिथ्यात्व है।

(3) शुभाशुभभाव हिंसा है। आत्मा के आश्रय से शुद्धभाव की प्राप्ति, वह अहिंसाधर्म है। एक बार अहिंसाधर्म प्रगट हो जावे तो सम्पूर्ण जैनशासन का पता

चल जाता है, इसलिए पात्र जीवों को जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार सात तत्त्वों को समझकर, अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति कर मोक्ष का पथिक बनना, प्रत्येक सुखार्थी का प्रथम कर्तव्य है।

(4) जिनधर्म आसान है, सुलभ है क्योंकि वह अपने पास ही है परन्तु अपात्रों को विश्वास नहीं आता। इसलिए एक बार विश्वास लाओ कि मैं ही सुख का खजाना हूँ, मेरे खजाने के अलावा बाहर कहीं भी सुख नहीं है। बस बेड़ा पार है।

(5) एक वाक्य को समझने के लिए शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ लगाकर स्वाध्याय करना चाहिए। इससे जिनधर्म का रहस्य समझ में आ जाता है।

जैसा केवली के ज्ञान में आया है, वैसा ही सब कुछ होता है।

सब भाई-बहिनों को यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

जांबुडी, 27-11-1975

श्री वीतरागाय नमः

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

जब तक जीव को सम्यग्दर्शन नहीं होता है, तब तक आठों कर्मों का बन्ध चौबीस घण्टे होता ही रहता है; इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

तू भगवान है; मात्र दृष्टि बदलनी है। शरीर का संयोग तो अरहन्त अवस्था तक रहता है। 'मैं उठा' 'मैं गिर पड़ा' शास्त्र के आधार से कहे उठा-गिर पड़ा - यह पुद्गल का कार्य है, तो भी झूठा है।

निरन्तर सूक्ष्म रीति से भेदविज्ञान हो तो मैं तीन लोक का भगवान हूँ, दृष्टि में आवे। समय रहते चेत जाना चाहिए, वरना यह जीव कहाँ जाकर पड़ेगा, कोई ठिकाना नहीं।

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

वर्तमान में परपदार्थों में अपनेपने का भाव, तिर्यञ्चगति की तैयारी है। जो जीव, व्यापार में रचे-पचे हुए हैं, भगवान जाने क्या होगा? यह जीव, दया के पात्र हैं। **गुरुदेव का समय, मोक्ष का आनन्द लेने का समय है।**

पर्चा साथ में पढ़ना तथा समयसार कलश 167 से 173 तक बार-बार पढ़ना – आप जैसे की दृष्टि नहीं आती है, मोटी भूल है। जरा विचारो।

30-1-76से 10-2-76तक दाहोद में क्लास लगेगी सो जानना। मैं 30-1-76को पहुँच जाऊँगा क्योंकि अहमदाबाद में 30-1-76को प्रोग्राम पूरा हो जावेगा। सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र!

यह पढ़ाने से पता चला है कि इन भागों में बड़ा भारी मर्म आ गया है। इन सबका प्रेम देहरादून मुमुक्षुओं को ही है। विशेषरूप से रूपचन्द्रजी ने शुरु किया। जैसी जीवों की योग्यता हो, वैसा होता है।

सबको यथायोग्य जयजिनेन्द्र

कैलाशचन्द्र जैन

पुनश्च –

समयसार कलश नम्बर 168 में लिखा है कि — 'अज्ञानी मनुष्यों में ऐसी कहावत है कि इस जीव ने इस जीव को मारा, इस जीव ने इस जीव को जिलाया, इस जीव ने इस जीव को सुखी किया, इस जीव ने इस जीव को दु:खी किया – ऐसी कहावत है। सो ऐसी ही प्रतीति जिस जीव को होवे, वह जीव मिथ्यादृष्टि है – ऐसा नि:सन्देह जानियेगा, धोखा कुछ नहीं। ऐसा जीव क्यों मिथ्यादृष्टि है? जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप परिणाम के द्वारा पहले ही बाँधा है, जो आयुकर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म, उस कर्म के उदय से उस जीव को मरण अथवा जीवन अथवा दु:ख अथवा सुख होता है – ऐसा निश्चय है परन्तु इसके बदले में मैं जीवन-मरण, सुखी-दु:खी करता हूँ आदि मान्यता होने से ऐसा जीव, मिथ्यादृष्टि है।'

समयसार कलश, 169 में लिखा है कि — 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारक, मैं सुखी, मैं दु:खी – ऐसी कर्मजनित पर्याय में है। आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना, उसके द्वारा कर्म के उदय से जितनी क्रिया होती है, उसे मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा – ऐसे अज्ञान को लिए हुए मानते हैं, वे जीव कैसे हैं? अपने को घातनशील हैं।'

ज्ञान की पर्याय में ज्ञानावरण के मन्द व अधिक क्षयोपशम की अपेक्षा निगोद से लेकर बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अनन्त भेद हैं। जो पर्यायस्वरूप ज्ञान की अनुमोदना करता है, एकाकार शुद्धज्ञान को नहीं जानता है, वह ज्ञान में अन्तराय डाल रहा है। यदि यह अन्तराय न देखा जावे और शुद्धज्ञान को पहिचाना जावे तो वह निर्मल, स्वाभाविक आत्मा को अवश्य सिद्धि पाने का उपाय है।

– श्री तारणस्वामी

समयसार कलश 170 में लिखा है कि — 'मिथ्यात्वरूप है जो ऐसा परिणाम कि इस जीव ने इस जीव को मारा, इस जीव ने इस जीव को जिलाया – ऐसा भाव, ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध का कारण होता है, क्योंकि ऐसा परिणाम, मिथ्यात्वरूप है।'

समयसार, कलश 171 में लिखा है कि — 'मिथ्यादृष्टि जीव अपने को जिसरूप नहीं आस्वादता है, ऐसी परद्रव्य की पर्याय व अपना शुभाशुभविकल्प, वह त्रैलोक्य में है ही नहीं। यह परिणाम कैसे हैं ? झूठा है क्योंकि मारने को कहता है, जिलाने को कहता है, तथापि जीवों का मरना–जीना अपने कर्म के उदय के हाथ में है; इसके परिणामों के आधीन नहीं है। यह अपने अज्ञानपना को लिए हुए अनेक झूठे विकल्प करता है।'

समयसार, कलश 172 में लिखा है कि — 'मैं मारूँ, मैं जिलाऊँ, मैं दुःखी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य, इत्यादि हैं जो मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम, वे समस्त परिणाम हेय हैं।'

समयसार, कलश 174 में लिखा है कि — 'अहो स्वामिन! अशुद्ध चेतनरूप हैं राग–द्वेष मोह इत्यादि असंख्यात लोकमान विभावपरिणाम, वे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध के कारण हैं ऐसा कहा, सुना, जाना, माना। कैसे हैं वे भाव ? शुद्ध चेतनमात्र हैं जो ज्योतिस्वरूपजीव वस्तु, उससे बाहर हैं।'

अरे भाई ! अपने आपको समझे बिना, सात कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। आयु बन्ध के समय आठों का होता है।

भगवान आत्मा तू स्वयं है, उसको भूलकर चौबीस घण्टे पर में बावला हो रहा है। अपने आपका अनुभव हुए बिना, साक्षात भगवान के समवसरण में भी बैठा हो तो भी सब कर्मों का बन्ध होता है। अतः जिस तरह से भी हो तुरन्त भेदज्ञान करके अपने स्वभावसन्मुख बनो।

अपनी आत्मा के अलावा पर में जिसे स्वप्न में भी अपनेपने की प्रतीति होती है, वह धर्म के लायक नहीं है।

अरे भाई ! दशलक्षण से आज तक सभी जगह छह सामान्यगुण और चार अभाव ही चले हैं, परन्तु रुचि नहीं है, इसलिए कल्याण मुश्किल है।

कैलाशचन्द्र जैन

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य–पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

जैसे (दीपक के द्वारा) प्रकाशित किये जानेवाले घटादिक (पदार्थ) दीपक के प्रकाशकत्व को ही प्रगट करते हैं, घटादिपने को नहीं; इसी प्रकार (आत्मा के द्वारा) चेतित होनेवाले रागादिक आत्मा के चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं, रागादिकत्व को नहीं।

– श्री अमृतचन्द्राचार्य

रामटेक, 17-3-1979

श्री वीतरागाय नम:

मोक्षमहल का पथ है, सीधा जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।

आत्मार्थी बन्धु! प्राणीमात्र के दु:ख का अभाव सुख की प्राप्ति के लिए अचूक औषधि – यदि ऐसा जाने-माने तो नियम से मिथ्यात्व का अभाव होकर, क्रम से सिद्धदशा की प्राप्ति हो। जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला का दूसरा भाग पृष्ठ 68 से 170 तक का मंथन करे तो बड़े से बड़ा पापी हो, उसका भी पापीपना अभाव हो सकता है। यहाँ पर (रामटेक में) शान्तिनाथ भगवान की विशाल प्रतिमा है। 16-3-79 की शाम को 20 मिनिट प्रतिमा के सामने बैठने का एकान्त में अवसर मिला तथा इस समय रात्रि के तीन बजे हैं, यह पत्र लिखने का विकल्प आया। अरे भाई! कैसा भी महान मिथ्यात्वी हो, उसके अभाव का उपाय निमित्तरूप यह आखरी उपाय है, यदि नहीं होता तो उसकी भगवान जाने, परन्तु 68 से 170 तक प्रश्नावली का एक प्रश्न भी न छूटे। जो नहीं लिख सकते, उन सबसे मौखिक ही चलावें – सबको जयजिनेन्द्र!

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

सागर, 18-5-1979

॥ श्री वीतरागाय नम: ॥

मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।

आत्मार्थी बन्धु समस्त मुमुक्षु भाई बहिनों को

जयजिनेन्द्र!

अरे भाई! तू चैतन्य अरूपी असंख्यात प्रदेशी भगवान आत्मा है; तेरे गुण, तेरी पर्याय चेतन हैं; अचेतन जड़ से सर्वथा तेरा सम्बन्ध नहीं है – यह बात आपके ध्यान में क्यों नहीं आती ? जड़ और तुझ चेतन में किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है – बस, बात इतनी ही है।

वास्तव में अज्ञानी को भगवान की वाणी का विश्वास ही नहीं है। इसे विश्वास में लाने के लिए उपाय प्रत्येक पात्र जीव को सूक्ष्म रीति से तत्त्व अभ्यास

है। अब प्रश्न है कि सूक्ष्म रीति से तत्त्व अभ्यास क्या है ? मेरे विचार में दूसरे भाग के पृष्ठ 68से उपादान-उपादेय के प्रश्न हैं। यदि यह बात ध्यान में सब जगह आ जावे तो तुरन्त अपने भगवान का पता चले।

यदि इस समय ऐसा योग होने पर भी नहीं चेता तो क्या होगा ? केवली जाने।

सारा कार्य व्यवस्थित ही है, इसमें जरा भी हेर-फेर का भाव आना, इसकी होनहार खराब है।

मुझे आश्चर्य होता है - आप लोग इतना अभ्यास करते हैं - ऐसा आप लोग कहते हैं - परन्तु मैं कहता हूँ, अभ्यास ही नहीं किया, क्योंकि इसका फल तो अतीन्द्रिय आनन्द है।

अरे भाई ! ऐसा अवसर नहीं आवेगा, यदि खो दिया तो पछतावेगा - कृपया पढिये सातवाँ भाग पृष्ठ 111-112 पर

मुझे तो विचार आता है, इतना सहज आसान धर्म है, इसे जीव ना जाने - जिसमें कुछ खर्च की भी आवश्यकता नहीं है। चेत - चेत - चेत !

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

अलीगढ़, 23-8-1989

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

पत्र 18.8.89 को मिला धन्यवाद।

जैसे नारियल है - (1) ऊपर बाल से हैं, (2) अन्दर ऊपर खोपड़ी सी है, (3) गोले के ऊपर छिलका पतला है, (4) अन्दर सफेद गोला है; उसी प्रकार (1) अत्यन्त भिन्न पदार्थ, (2) कर्म-शरीरादि, (3) रागादि भाव से आत्मा त्रिकाल निराला पड़ा है। उस पर दृष्टि दे तो सुखी है।

भाई ! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

जैसे कोई मनुष्य पहाड़ पर से फिसल पड़े और कोई हितकारी बनकर उसकी भुजा मजबूती से पकड़ लेवे; उसी प्रकार ज्ञानियों को जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक व्यवहार का अवलम्बन है, यद्यपि यह बात सत्य है तो भी निश्चयनय चैतन्य को सिद्ध करता है तथा जीव को पर से भिन्न दर्शाता है और व्यवहारनय तो जीव को पर के आश्रित करता है।

– पण्डित बनारसीदास

अनादि-निधनवाला मन्त्र सब मन्त्रों का सरताज है – जिसके ध्यान में आ जावे, तुरन्त मिथ्यात्वादि का अभाव हो जावे।

सुबह से शाम तक जितनी रूपीकार्य है, आत्मा से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, व्यर्थ में मिथ्या अध्यवसाय करके दु:खी होता है।

उभयाभासी का प्रकरण तथा उपादेय-उपादान के 100 प्रश्नोत्तर, मिथ्यात्वादि के अभाव के लिये अलौकिक हैं।

यहाँ अकेला आया, अकेला जावेगा, व्यर्थ मिथ्या अध्यवसाय में पागल है।

सम्पूर्ण मुमुक्षु मण्डल को मेरा हार्दिक जयजिनेन्द्र कहना।

मैं आशा करता हूँ दशलक्षण तक शायद सब काम पूरा हो जावे – तो ठीक रहेगा।

108 सेट – 18-18के छह बंडल बनाकर सूचना देना – बाँधने के बाद ही सूचना देना। एक जगह की कुछ माँग है।

(1) निमित्त (2) निमित्तनैमित्तिक, व्याप्य-व्यापक, निश्चय-व्यवहार, चार कारण सब लिखना चाहिए।

आपने चोरी की बावत लिखा, बहुत अच्छा किया-पता लगाया जावेगा।

इस काम में / आत्मकार्य के लिए किसी की सेवा उपासना की आवश्यकता नहीं है।

पूज्य कानजीस्वामी का पंचम काल में जन्म एक अचम्भा है। जो बात अनादि से तीर्थङ्करादि कहते आये हैं, उसी बात को बतलाकर चले गये।

मेरी भावना है यदि दशलक्षण तक आये, यहाँ का पूर्ण कार्य हो जावे तो सेवक उपस्थित हो जावेगा।

सबकी तरफ से जयजिनेन्द्र

आपका,

कैलाशचन्द्र जैन

बिजौलियाँ, 26-6-1989

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र !

पत्र बुलन्दशहर से लिखा मिला, धन्यवाद।

इन पार्सलों को मंगाकर ठीक प्रकार रखवा देना, मेरी निजी पुस्तकें हैं।

मैं पूरा अगस्त देहरादून में रहूँगा।

चौथा भाग के 165 से 210 तक जैसे पढ़ने चाहिए, पढ़े ही नहीं - मात्र नोबल की तरह पढ़ा है।

यह जीव, शरीर एवं शरीर के कार्यों में तथा उनसे सम्बन्धित अत्यन्त भिन्न परपदार्थों में ही पागल है, जबकि इससे सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

जैसे रुचि तन-मन-धन है, वैसी रुचि निज भगवान आत्मा से हो जावे, बेड़ा पार हो जावे।

दृष्टि बदलते ही पता चलेगा - चिराग तले अंधेरे जैसी बात है।

आपने लिखा, पहले भी लिखा, बिजौलियां आ रहा हूँ परन्तु संसार की रुचिवालों को फुरसत कहाँ है। यदि रुचि हो तो 24 घण्टे फुरसत है।

मैं अगस्त में देहरादून रहने पर निर्णय लूँगा, कितना और रहना है, मेरी तो भावना बिजौलियां-देहरादून रहने की है।

जिस भावना से स्वाध्यायभवन बनवाया है, वह भावना साकार हो - इस भावना से मैंने अगस्त का महीना रखा है।

अगस्त का महीना ठहरने का राजेन्द्रबाबू के यहाँ रहेगा - बाद में स्वाध्यायभवन में रहेगा - बाद में क्यों? दशलक्षणपर्व सितम्बर 5 से है, उसमें मैंने ग्यारसपुर का वायदा किया हुआ है, ग्यारसपुर सीधा देहरादून आने की भावना है, तब लगातार कम से कम तीन महीने रहने की अन्दर की भावना है। यह तभी, आप लोग कुछ निवृत्ति लेकर अपने कल्याण के लिये लगें।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है, जब तक राग और पुण्य-पाप की बुद्धि थी तब तक स्वभाव से विमुख और संसार के सन्मुख था; राग का कर्ता होता था, जहाँ राग से दृष्टि हटकर स्वभाव सन्मुखता हुई, वहाँ सम्पूर्ण जगत के जाल से पृथक् हो गया।

मङ्गल समर्पण

दिनाँक 22-3-92

आत्मार्थी बन्धु छगनलालजी व समस्त मुमुक्षु मण्डल

जय जिनेन्द्र!

(1) आज एकमात्र सम्यग्दृष्टि को छोड़कर सारा विश्व, शरीरादि की एकत्वबुद्धि में पागल हो रहा है। उसके अभाव का एकमात्र उपाय – तू त्रिकाल जीवतत्त्व है; अजीवतत्त्व से तेरा सम्बन्ध नहीं है।

(2) मैं तो मुमुक्षु का सेवक हूँ। तब तक पूर्ण स्थिरता नहीं होगी – ऐसा राग, कि मुमुक्षु समाज आज ही आत्मसन्मुख हो; आ जाता है।

धर्म का सम्बन्ध, मात्र आत्मा से ही है; पर से, राग से सर्वथा नहीं है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 3-3-95

आत्मार्थी बन्धु छगनलालजी व समस्त मुमुक्षु मण्डल

जय जिनेन्द्र!

पत्र मिला धन्यवाद!

स्वयं जीवतत्त्व है। अनादि से जाना-माना नहीं, इसलिए अजीवतत्त्व में अपनेपने की मान्यता से ही चारों गतियों में भ्रमण करता-रहता है।

जब यह जानेगा-अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न, मैं ज्ञान-दर्शनादि स्वभावों से अभिन्न जीवतत्त्व हूँ, तभी मोक्षमार्ग में प्रवेश हो जावेगा; सादि-अनन्त सुखी हो जाएगा।

कहीं भी कुछ नहीं धरा है; आप लोग तीनों समय, लिखकर कार्य करोगे तो कल्याण का अवकाश है, मात्र बातें मिलाने से कार्य नहीं सधेगा। जैसे, यह सामने साँप है- ऐसा जाना, तुरन्त पीछे हट जाता है; इसी प्रकार में अजीवतत्त्व नहीं हूँ, तभी मैं जीवतत्त्व हूँ, इसमें आ गया; बस इतना ही है।

अपने को भूलकर, अजीवतत्त्व को अपना माननेवाले को नपुसंक कहा है। जैसे, हीजड़ों के पुत्र नहीं होता; उसी प्रकार जो अजीवतत्त्व को अपना मानते हैं, उन्हें कभी धर्म नहीं हो सकता है।

कोई निन्दा करता है तो निन्दा करो, स्तुति करता है तो स्तुति करो, लक्ष्मी आओ व जहाँ-तहाँ जाओ, तथा अभी मरण होओ व युगान्तर में होओ; परन्तु नीति में निपुण पुरुष न्यायमार्ग से एक डग भी चलित नहीं होते।

शरीर अलग है, मैं अलग हूँ – ऐसा विचार आया है ? कभी आया ही नहीं। अत: मैं भगवान हूँ, शरीर नहीं हूँ – ऐसा मानो–जानों तो बेड़ा पार है।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

दिनाँक 24-9-88

आत्मार्थी बन्धु मुमुक्षु समाज बिजौलियाँ

जय जिनेन्द्र!

(1) आज दशलक्षण पर्व पूरा हो रहा है। ऐसे दशलक्षण पर्व ना जाने कितने पूरे किये होंगे, परन्तु दशलक्षण पर्व मनानेवालों को पता ही नहीं, दशलक्षण पर्व क्या है ?

(2) आत्मा के आश्रय से जो शुद्धि प्रगटी है, वह उत्तमक्षमादि है। शुद्धि तो एक ही प्रकार की है परन्तु उसे अनेक नामों से कहा जाता है। जैसे छठवें–सातवें गुणस्थान में सकलचारित्र शुद्धि है, उसे ही उत्तमक्षमा, मार्दव आदि अनेक नामों से कहा जाता है। इस बात को ज्ञानी ही जानते हैं,अज्ञानी का इसमें प्रवेश नहीं है।

(3) अधिकतर तो छह द्रव्य, सात तत्त्वों की जानकारी भी नहीं है; मात्र शरीर की क्रिया को ही सब धर्म मानते हैं, क्या करें ? कोई सत्य बात समझता है, उसे सुहाता नहीं है।

(4) मैं तो जितना जानता हूँ, इन भागों में है। आप लोगों से सविनय प्रार्थना है, छह घण्टे इन्हें चलावें, आत्मसन्मुख होवें।

(5) पंचम काल को चौथा काल व भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र बनाकर पूज्य गुरुदेवश्री चले गये, उन्हीं का खजाना इन भागों में है। यह उन्हीं का माल है, मैंने तो जो सीखा है, वह पूज्य श्री के चरणों की धूल है।

(6) पूरे मुमुक्षु समाज को अलग–अलग तथा एक ही साथ जय जिनेन्द्र कहना।

(7) आप लोगों को जो कहना आ गया, अब आगे बढ़ना है।

भवदीय

मरणकाल में यहाँ का सब छूट जाएगा; मात्र बाँधे हुए कर्म, उसका फल देने के लिए साथ जाएँगे। अरे! बाहर की एक वस्तु छोड़ने पर तुझे इतना दु:ख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव एक साथ छूट जाएँगे, बदल जाएँगे, तब तुझे कितना असहनीय दु:ख होगा ?

मङ्गल समर्पण

अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

कैलाशचन्द्र जैन दिनांक 26-10-89

आत्मार्थी बन्धु छगनलालजी व समस्त मुमुक्षु समाज बिजौलियाँ

जय जिनेन्द्र!

(1) जैसे अलमारी किताब रखी हैं; उसी प्रकार शरीर से आत्मा भिन्न है। आप सब चतुर है; यदि वर्तमान में शरीर से भिन्न अपना अनुभव न हुआ तो चौरासी लाख योनियों में घूमता रहेगा; यदि शरीर से भिन्न अपना अनुभव हो तो मोक्ष सामने हैं।

(2) समझ में कैसे नहीं आता है?

(3) उत्तर — (A) स्वयं ज्ञायक भगवान स्व है - शरीर पर है, इसे अपना मानता है।

(B) आत्मा का कार्य, ज्ञानक्रिया है, इसके बदले शरीर के कार्यों को अपना मानता है।

(C) सुबह से शाम तक जितने कार्य हैं, वे सब सर्वथा पुद्गल के हैं; उनका कर्ता-कर्म सर्वथा पुद्गल ही है; उसे आत्मा का कार्य तथा अत्यन्त भिन्न को अपना कार्य मानता है। क्यों मानता है? मोहरूपी शराब पी रखी है। उसे उतारने का क्या उपाय है?

चेतन को है उपयोग रूप......पूरा अर्थ सहित विचारो।

(4) संसार में किसी का जन्म-मरण होता ही नहीं - अनादि-निधन वाली बात विचारो।

(6) दूसरी बात मेरे विचार से, जैसे अंजन चोर, कितना बड़ा पापी, उसी भव से मोक्ष चला गया। यदि किसी से दोष हो भी जावे, वह एक समय का होता है। पात्र जीव को अपनी पर्याय में एक समय गलती और त्रिकाली स्वभाव का ध्यान आना चाहिए।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन